R.S.

अनमोल विचार

प्रथम तरङ्ग

प्रार्थना

मैं तुम से क्या माँगू! तुम्हारे पास है क्या! तुम सब दे दिलाकर खाली हाथ दिखलाई देते हो। कहते हैं तुम सब कुछ हो और कुछ भी नहीं। तुम मन और बुद्धि की पहुँच से बहुत दूर हो। फिर मैं माँगू भी तो कैसे माँगू? और क्या माँगू? मुक्त और स्वतन्त्र से उसकी मुक्ति और स्वतन्त्रता माँगना अच्छा नहीं। धनवान से उसके धन के लेने की इच्छा रखना व्यर्थ ही है। इसके सिवा जब मैं विचार करता हूँ तुम में धन, द्रव्य, बल, और शक्ति कुछ नहीं पाता। तुमने लक्ष्मी विष्णु को दे दी। लक्ष्मी विष्णु की अर्द्धांगिनी है। मैं कैसे कहूँ कि तुम मुझको लक्ष्मी दो! मैं विष्णु के साथ युद्ध करना नहीं चाहता। तुमने शक्ति और बल शिव भगवान को दे दिया है। शक्ति उनकी स्त्री है। मैं कैसे कहूँ कि मुझको शक्ति दो! यह बहुत बड़ी ढिठाई और असभ्यता होगी। मैं कैसे कहूँ कि तुम मुझ को विद्या और बुद्धि दो! विद्या और बुद्धि का नाम गायत्री और सावित्री है। यह ब्रह्मा की स्त्रियाँ हैं। ब्रह्मा यों ही चार मुँह की आंठों आँखों से चारों ओर देखते रहते हैं। उन

को क्रोध दिलाना मूर्खता है। और फिर वह बड़े बूढ़े भी ठहरे। इसका भी तो ध्यान रखना ही पड़ता है। मैंने बहुत अच्छी तरह से सोच लिया तुम कि सब कुछ औरों को दे दिला-कर आप सबसे अलग थलग हो गये हो। तुम्हारे पास कुछ नहीं है इसलिये तुम से माँगना भी अनसमझी की बात है। ढिठाई और अपराध क्षमा करो। मैं कुछ नहीं माँगता और न माँगने के अभिप्राय से तुम्हारे पास आया हूँ। हाँ, यदि तुम यह समझते हो कि मेरे पास कुछ है तो वह ले लो। यह सब तुम पर न्योछावर हैं। मैं स्वयं तुम पर न्योछावर होता हूँ। मेरी निर्धनता, मेरी बेबसी, मेरी मूर्खता और दीनता यदि तुम्हारी दृष्टि में कुछ भी मूल्य रखती हूँ तो इन्हें मैं प्रसन्नता से तुम्हारे पवित्र चरणों में अर्पण करता हूँ। इनको स्वीकार करो। मेरे मन के भावों को, पुरुषार्थ और उत्साह को, मेरे देखने, सुनने, बोलने और समझने बूझने की शक्तियों को और इनके सिवा और भी जो कुछ है वह लेकर अपना बना लो। मुझको इनकी आवश्यकता नहीं है। यदि यह तुम्हारे अपर्पण और समर्पण हो जायें तो मैं अपने आपको बड़ा ही भाग्य-वान समझूँगा। धन, द्रव्य, बल शक्ति, विद्या बुद्धि यह मेरे पास नहीं हैं परन्तु यदि इनके लिये कुछ भी इच्छा मन में हो तो वह भी तुम ही ले लो। मुझको इनकी भी आवश्यकता नहीं है।

लोग कहते हैं तुम सत् हो, चित् हो, आनन्द हो, शुद्ध हो, मुक्त हो, बुद्ध हो। इन सारे गुणों को भी अपने पास रक्खो। शुद्धता मुक्तपना, बुद्धपना, इनमें से भी मुझको किसी की इच्छा नहीं है। जो तुम्हारा है वह तुम्हारे ही पास रहे और यदि मैं भी तुम्हारा ही हूँ तो जानते ही हो कि जो जिसका है वह उससे दूर कब रह सकता है। इसलिये मैं नहीं समझता कि

तुम से माँगू भी तो क्या माँगू! परन्तु न माँगना भी ढिठाई और अनुचित है। इन बातों को विचार कर मैं तुम से माँगता हूँ :—

भिक्षा

हम आये! आये!! आये!!!
आज तुम्हारे द्वार पर' प्रभु भिक्षा माँगन आये (टेक)
क्या माँगू कुछ थिर न रहाई। सुत दारा धन अगमा पाई॥
इनसे रहुँ नित चित्त हटाई। माँगत मन अति रहत लजाई॥
यह हृदय नहिं भाये ॥१॥
रूप अनूप तुम्हारा देखा। मिट गया काल कर्म का लेखा॥
सब का सब बिधि किया परेखा। प्रेम प्रीत का यही बिसेखा॥
नयनों जल भर लाये ॥२॥
माँगन गये सो लौटे नाहीं। भर्म रहे माया परछाईं॥
मन में पड़ गई काल की झाईं। बिनती सुनो हमारी साईं॥
हम तो रहे सकुचाये ॥३॥
जिह्वा थकित थकित मन काया। दर्शन पाय जिया ललचाया॥
पद सरोज की दीजे छाया। व्यापे काम क्रोध नहिं माया॥
निस दिन रहूँ लौ लाये ॥४॥
हित चित से रहूं अज्ञाकारी। निख सिख उर में बसो हमारी॥
तुम हो दीनबन्धु हितकारी। राधास्वामी चरन शरन बलिहारी॥
लो अब अंग लगाये ॥५॥

दूसरी तरंग

(१) मूर्ख

किसी गाँव में एक सीधा साधा आदमी रहता था। सब उसको नादान और भोला भाला समझते थे और उसका नाम मूर्ख

रख छोड़ा था। चाहे वह कुछ ही क्यों न कहा जाता परन्तु वह सदैव प्रसन्न चित्त रहता था। उसके रूप से शान्ति बरसती थी। वह हवा के पक्षियों और पानी की मछलियों की तरह इधर से उधर फुदकता रहता था। संसार के दुख और चिन्ता की उसे हवा भी नहीं लगती थी। और लोग दुखी थे। उनको चिन्ता और बेचैनी रहती थी। न दिन को चैन, न रात को नींद! जिसको देखिये वही सुबह से शाम तक अपने भाग्य के दुखड़े ही सुनाया करता था। यह सब के सब उस मूर्ख को न केवल कोसा करते किन्तु बहुत ही अपमान की दृष्टि से देखा करते थे। उनकी समझ में वह मूढ़ और विचार हीन था। मूर्ख में सच-मुच इन जैसे आदमियों की सोच समझ की योग्यता कहाँ थी। वह तो यह भी नहीं जानता था कि दुख बेचैनी किस जानवर का नाम है!

किसी को क्या पता था कि यह क्यों इस तरह का मूर्ख बना हुआ है और जीवन की किस घटना ने उसकी यह दशा बना रक्खी है। वह लोगों में 'मूर्ख' के नाम से प्रसिद्ध था। मूर्ख होने से न किसी को उसकी परवाह थी और न कोई उससे मिलता था। हां, इतना सब जानते थे कि वह दिल का नेक और भोला भाला था और किसी को किसी प्रकार दुख नहीं पहुंचाता था। वह रात दिन गाँव में इधर उधर फिरा करता था। जी में आता तो गाय और भैंसों से पागलों की तरह बात चीत करता था। उसके साथी पशु और पक्षी थे। लड़के भी उससे बहुत ही हिले मिले थे। वह उससे अभय होकर मिलते जुलते थे और उसकी भोली भाली बातें सुनकर खूब हँसते थे। मूर्ख में एक बात विचित्र थी। जब वह किसी बुद्धिमान या विद्वान मनुष्य को देखता तो उँगलियों को नचाता और आँखें दिखाता हुआ इस तरह उनसे दूर भागता

था जैसे आदमी कीड़े मकोड़े और साँप कनखजुरों की छाया से बचना चाहते हैं। एक दो बार लोगों ने उसको कहते हुये सुना था "आह! मैं तुमको जानता हूँ। मैं तुम्हारे रग रग को पहिचानता हूं। तुमको वाद विवाद और शास्त्रार्थ से काम रहता है। तुम बाल की खाल निकालते और हिन्दी की चिन्दी करते रहते हो। मैं मूर्ख हूँ। मुझको इनसे क्या काम है? मैं तुम्हारी छाया से दूर भागता हूँ।" वह यही कहता हुआ और जोर से हँसता हुआ यह जा वह जा नौ दो ग्यारह हो जाता था। उनकी ओर कभी ध्यान भी नहीं देता था और इन बुद्धिमानों को भी क्या पड़ी थी जो एक मूर्ख को छेड़कर दर्द सर मोल लेते।

(२) फ़िलास्फ़र

एक दिन उस गाँव में एक आदमी आया जो बहुत दूर दूर का सफर करके वहाँ पहुँचा था। सर्व साधारण यही जानते थे कि यह सचाई का खोजी और फिलोसफी का प्रेमी है। बहुत दिनों से वह इसी खोज में मारा मारा फिरता रहा। रात दिन इसी उधेड़ बुन में लगा रहता था परन्तु सच्चाई नहीं मिली। वह अब तक कोरे का कोरा ही रहा। यह सचाई क्या है? यह ऐसी सुन्दरी के सदृश है जो अपने प्रेमियों को नाच नचाती रहती है और फिर भी उनके हाथ नहीं आती। उसकी झलक दिखाई पड़ी और प्रेमी ने समझ लिया कि अब कहाँ जाती है परन्तु नहीं वह तो बिजली का कौंधा थी जो चमक दमक दिखाकर देखते देखते आँखों से ओझल होगई। यही इस मुसाफिर फ़िलास्फ़र का हाल था। इसने उसकी खोज में घर बार छोड़ा, सुख चैन से मुँह मोड़ा, नाना प्रकार के दुख और कष्ट उठाये, धर्म कर्म को उसके लिये न्योछावर कर दिया परन्तु हाथ क्या आया?

कुछ भी नहीं !

असलियत सचमुच दिल लुभाने वाली सुन्दरी है। यह दिलों को छीन कर बेदिल बना देती है। फ़िलास्फ़र ने कहीं सुना था कि सचाई का दर्शन किसी को प्राप्त होगया है और सम्भव है उसकी संगत से दूसरे भी उसे देख सकें। फिर क्या था यह गिरते पड़ते वहां जा पहुँचा। आशा मनुष्य को नई नई शक्तियाँ देकर उसके उत्साह को बढ़ाती है। जाने को तो यह बेचारा गया परन्तु सचाई का कहीं भी पता न लगा।

पूछा गछा "भाई ! असलियत कहाँ है ?" किसी ने कहा "फ्रान्स विद्या का भण्डार है वहाँ जाकर पता लगाओ।" यह वहाँ भी गया परन्तु सुनता क्या है कि फ्रान्सीसियों ने अपनी विद्या के घमण्ड में असलियत के साथ ढिठाई का सलूक किया। उसके आस्तित्त्व (होने) से इनकार कर गये और वह पर झाड़ कर वहाँ से उड़ गई। फ्राँसीसी कहते हैं कि वह और वस्तुओं की तरह पृथ्वी के परमाणुओं से पैदा होती है। यह बात सचाई को बुरी लगी और वह वहाँ से नौ दो ग्यारह होगई। तब यह फ़िलास्फ़र जरमनी में आया। जरमन उसकी तका बोटी करने का विचार कर रहे थे इसलिये सचाई ने वहां से भी अपना डेरा डंडा उखेड़ लिया। तब यह दुख का मारा हुआ इँग्लैंड में आया और यूनीवर्सिटियों के कालिजों के दरवाजे खटखटाने लगा। जब अँग्रेजों ने सुना कि वह सचाई की खोज में मारा मारा फिर रहा है तो उसकी हँसी उड़ाने लगे- "वाह ! अन्धे को अँधेरे में बहुत दूर की सूझी ! कैसी सचाई ! मनुष्य जीवन ही सब कुछ है। खाओ, पियो, चैन उड़ाओ। साइन्स का बोल बाला है। केवल साइन्स ही मनुष्य जीवन को सुखी बनाने का आधार है। कैसी सचाई !

फ़िलास्फ़र को उनके रहन सहन। बातीलाप और व्यवहार से

घृणा पैदा हुई। जी में तो आया कि इस विचार को छोड़ दे परन्तु उसी समय दिल ने कहा "हारिये न हिम्मत बिसारिये न हर नाम।"

दोहा

"जिन ढूँढा तिन पाइयां, गहिरे पानी पैठ।
मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ॥"

दिल की आवाज़ को कौन चुप कर सकता है! किस में यह शक्ति है! वह इँग्लैंड से भागा तो उसी गाँव में आकर दम लिया जहाँ यह प्रसिद्ध मूर्ख रहता था।

(३) फ़िलास्फ़र और मूर्ख का मिलाप

गांव में सचाई कैसी! यहां सचाई का नाम कहाँ! जब फ्राँन्स, जरमनी और इँग्लैंड ऐसे सभ्य देशों में उसका पता नहीं है तो गाँव में उसका दर्शन कैसे मिल सकता है! यही सब बातें सोचकर वह फ़िलास्फ़र गांव से भी किसी दूसरी जगह जाना चाहता था। चलते फिरते एक पहाड़ी टीले के पास जा निकला। दिन डूबना ही चाहता था। आवाज़ आई "राह में भूले भटकों पर मालिक दया करे! तुम सर नीचा किये हुये किधर जारहे हो? सर क्यों नहीं उठाते? सूरज के प्रकाश और चमक दमक को क्यों नहीं देखते? वह देखो! पहाड़ की आड़ में सूरज किस आन वान से डूबता हुआ चला जा रहा है! यह दृश्य देखने ही के योग्य है।

फ़िलास्फ़र ने सर ऊँचा किया। ऊँचे चट्टान पर एक विचित्र मनुष्य बैठा हुआ दिखलाई दिया। शान्ति के साथ पाँव पर पांव धरे हुये वही मूर्ख बैठा हुआ मुस्करा रहा था उसकी मुस्कराहट से भी सादगी टपकती थी।

फ़िलास्फ़र—"हाय ! पता नहीं मैं किधर जा रहा हूँ !"

मूर्ख—"क्यों ! तुम गांव को जा रहे हो जो इस पहाड़ी के पीछे है।"

फिलास्फर—"किस अभिप्राय से ?"

मूर्ख—"सोने के लिये। सोने से बढ़कर और क्या सुख होगा ! तुम उतावले जान पड़ते हो। इस जल्दी से काम ही क्या निकलता है ? बड़े आश्चर्य्य की बात है कि लोग बिना समझे बूझे जल्दी जल्दी पांव उठाते हुये चले जा रहे हैं परन्तु उनको पता नहीं है कि वह कहाँ और किस लिये जा रहे हैं !"

मूर्ख ने तो बात बात में फ़िलास्फ़र के सोचने के लिये एक बारीक बात कह दी थी परन्तु बारीक बातों को समझता कौन है ! कोई ऐसा ही विवेकी पुरुष मिल जाये तो सैन बैन को समझे। यह हर बुद्धिमान का काम नहीं है। यही कारण है कि बोलने वाले चुप और सच्चे बुद्धिमान मूर्ख बन रहते हैं। मूर्ख ने पूछा ' क्या तुम यहाँ नहीं सो सकते ?"

फ़िलास्फ़र को क्रोध आया। वह कहने वाला ही था कि "तुझ को मेरी क्या पड़ी है ! तू अपना काम कर", परन्तु मूर्ख की सादगी देखकर उसका क्रोध जाता रहा और वह नर्म दिल बन गया, उसने जबाब दिया "दूर से आया हूं और दूर ही जाना है।"

मूर्ख—"कुछ सुनूँ तो सही कि किधर जाने का विचार है। फ़िलास्फ़र घबराया। उसने आँखें खोलकर मूर्ख को सर से पाँव तक देखा—"यह कौन है जो मुझसे प्रश्न करता चला जा रहा है ! आज कल की सभ्यता के अनुसार किसी अनजान

आदमी से ऐसी बातें पूछना महा अनुचित समझा जाता है। 'मान न मान मैं तेरा मिहमान' ऐसी छेड़ छाड़ अच्छी नहीं होती परन्तु इसकी बातों में गँवारपन नहीं है। यह बच्चे की तरह सीधा सादा और भोला भाला है। इसके प्रश्न में सचाई है। फिर क्यों न मैं इससे अपना हाल साफ़ साफ़ कह दूँ ! आज तक किसी पढ़े लिखे आदमी से मेरा काम नहीं निकला। सम्भव है यह मेरी गुत्थी को सुलझा सके। इसके साथ बात चीत करने में हर्ज,ही क्या है ?" फ़िलास्फ़र यह सब बातें सोच कर मूर्ख से कहने लगा "भाई ! मैं तुम से क्या कहूं। मैं सचाई की खोज में सालों से चक्कर लगा रहा हूं।"

मूर्ख—जोर से हँसा। उसकी हँसी की आवाज़ उस पहाड़ी में गूँज उठी। वह हँसते हँसते लोट पोट होगया परन्तु थोड़ी ही देर में सँभल कर बैठा—"तुम यह तो बताओ कि तुम सचाई को जानते भी हो या यों ही उसकी खोज में लगे हुए हो ? सम्भव है कि तुम यों ही बिना जाने बूझे और पहिचाने हुये सचाई को ढूँढ़ रहे हो और वह तुम्हारे पास ही हो और तुम उससे आप ही दूर निकल जाते हो। भाई मुझको तो सन्देह है। यदि तुम्हें कुछ भी सचाई की पहिचान होती तो इतनी दूर भटकते हुये क्यों निकल आते ! और क्यों इतना दुख उठाते ! मुझे तुम्हारी खोज में भी सन्देह है।"

मूर्ख—यह कह कर चुप हो रहा और फिलोस्फर को गहरी नजर से देखने लगा। ऐसा जान पड़ता था मानो उसकी आँखें दिल के परदों में घुस कर उसके सच्चे भाव का तमाशा देख रही हैं। फ़िलास्फर चुपचाप हक्का बक्का खड़ा है। कहै भी तो क्या कहे ! देखो मूर्ख ने कैसा सवाल किया जिसके जबाब देने की योग्यता इतने बड़े विद्वान फिलास्फर

में भी नहीं थी।

(४) सचाई का पता

मूर्ख ने नाक सिकोड़ी, हाथों को फैलाया, अँगड़ाई ली और उठ खड़ा हुआ। "वाह वाह! सन्ध्या का समय भी कैसा सुहाना है! ठंडी ठंडी हवा बह रही है। फूलों की बास की लपटें आ रही हैं। मेरे प्यारे मित्र! तुम कहाँ सचाई की खोज में मारे मारे फिर रहे हो! सचाई कुछ शैतान की जायदाद तो नहीं है जो वह उसको छुपा रखता? इधर देखो! सचाई यहाँ है। सचाई वहां है। सचाई ऊपर है। सचाई नीचे है। सचाई हमारे सामने है।"

फ़िलोस्फ़र—"जो तुम कहते हो सच ही है परन्तु बड़े शोक की बात है कि फिर भी सचाई का पाना मुझे महा कठिन जान पड़ता है। उदाहरण के लिये मुझ ही को न देखो। मैं कितने दिनों से उसकी खोज में मारा मारा फिरता हूँ परन्तु जहाँ देखता हूँ द्वन्द ही द्वन्द दिखलाई देता है।"

मूर्ख—"तब फिर तुम उसकी खोज क्यों करते हो?"

फ़िलोस्फ़र की तिउरी बदल गई। "फिर क्या किया जाता! तुम्हारी बातों से तो ऐसा जान पड़ता है जैसे तुमने सचाई को पा लिया है! बातें तो इसी तरह की करते हो। क्या तुमको यह सचाई मिल गई है?"

मूर्ख—मुसकराया, "हांजी! तुम्हारा विचार ठीक है। मैंने सचाई को देख लिया, सुन लिया, परख लिया और पा लिया है। जिस दिन से मुझको सचाई मिल गई है उस दिन से फिर मैं मनुष्य नहीं रहा। मनुष्य है क्या? मनुष्यत्व का चिन्ह क्या है? सदा ही लालची बना रहना, सन्तोष का न आना, यही

मनुष्य का गुण है। मुझसे यह बात सदैव के लिये जाती रही। पाँव के नीचे ख़ज़ाना है। आदमी पांव उठाये हुये भागा जा रहा है। उसकी दृष्टि ख़ज़ाने पर नहीं पड़ती। वह भूल भ्रम, सोच विचार और व्यर्थ बातों में बुरी तरह फँसा रहता है। यह मनुष्य अज्ञानी और मूर्ख है। मेरी बातों को सुनकर तुम आश्चर्य्य करते होगे। ऐसे ही लोगों ने मेरा नाम मूर्ख रख छोड़ा है। मैं इसी नाम से गांव में प्रसिद्ध हूँ। मैं भी पहिले मनुष्य था। मैंने तरह तरह के दुख उठाये। बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना किया। मैंने बहुत कुछ सोचा विचारा और फिर इसी सचाई के अथाह सागर में डुबकी लगाकर उसी का हो रहा........"

मूर्ख आनन्द में मग्न था। उसकी आंखें मस्ती से चमकने लगीं। उसके ललाट पर एक विचित्र झलक थी। फ़िलोस्फ़र ने अपनी खुली आंखों से देखा और मूर्ति की तरह टकटकी बाँध कर ताकता रह गया।

दोहा

गुरु का निरख आँख और माथा।
सत् का नूर रहै जिस साथा॥

फ़िलोस्फ़र चुप है। वह कहता भी तो क्या कहता! "एक मूर्ख को सचाई के जानने का अभिमान है। जिस तक मन और बुद्धि की पहुँच नहीं है वह उसको अपने हाथ की वस्तु बतलाता है! अन्धेर है या नहीं!"

(५) सचाई की असलियत

मूर्ख दो चार मिनिट तक चुप रहा। फिर बोल उठा। "आज बहुत दिनों के पीछे मैंने आदमी से बातचीत की है।

कितना समय हुआ यह मुझको याद नहीं है क्योंकि मैं समय का हिसाब घंटे, दिन, सप्ताह, महीने या साल से नहीं करता। तुम सैकड़ों साल का हिसाब लगाते रहते हो। भाई! अपने सर की टोपी उतार कर नीचे रख लो। इससे तुम्हारे दिमाग पर बोझ है। क्या तुम नहीं जानते सभ्यता और सचाई से बैर है। मनुष्य का रहन सहन सचाई के जानने और उसके प्राप्त करने में बाधक है। तुम घरों में घिरे रहते हो कपड़ों के रस्सों से बँधे हुये हो। ऐसी दशा में कैसे सम्भव है कि तुम सचाई तक पहुँचो या सचाई तुम तक पहुँचे। तुम प्रकृति से जो वास्तव में सचाई है दूर भाग रहे हो। सचाई शारीरक जगत् से दूर और अलग कब है! तुमने आप अपने भ्रम और अज्ञान से बीच में परदा डाल दिया है। तुम्हारे विचारों की गुत्थियाँ फाँसी और सूली से कम नहीं हैं। इनमें तुमने अपनी गरदन दे रक्खी है। यही कारण है कि आँखों के सामने अँधेरा है। आँखें पथराई हुई हैं। सर में चक्कर है। मन डाँवाँडोल होकर द्विचिताई में पड़ा हुआ है। भ्रम, भ्रान्ति और बुरे विचारों को मन से दूर करो। फिर सम्भव है सचाई तुम्हें आप दर्शन दे। जब तक यह दशा है तब तक तुम कैसे आशा कर सकते हो कि सचाई तुमको मिलेगी! या यह या वह! दोनों एक साथ नहीं रह सकतीं।"

दोहा

जहाँ काम तहाँ नाम नहि, जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं, रवि रजनी इक ठाम॥

(परम संत कबीर साहिब)

"शान्त हो जाओ। भूमण्डल के इस सिरे से उस सिरे तक का चक्कर लगाना छोड़ दो। तुम तो मज़बूत चमड़े का बूट

पहिन कर सचाई का शिकार करना चाहते हो। उसका पीछा करके अपना समय नष्ट कर रहे हो। मूर्ख! वह तुमसे दूर नहीं भागती। तुम आप ही उससे भागे भागे फिर रहे हो। यदि तुम चाहते हो कि सचाई अपनी जुबान खोले तो तुम पहिले अपनी जुवान को बन्द करो। यदि तुम चाहते हो कि सचाई की धुन कानों को सुनाई दे तो फिर भ्रम के राग का सुनना बन्द करो। यदि तुम्हारी इच्छा है कि सचाई का दर्शन मिले तो फिर आँखों को भ्रम और भ्रान्ति के दृश्य से हटा लो…… ”

दोहा

तीन बन्द लगाय कर, सुन अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाध में, नहीं साँझ नहिं भोर॥ (गुरु नानक)

“मनुष्य अहङ्कारी है–विद्या का अहङ्कार, बुद्धि का अहङ्कार, जाति कुल और धर्म का अहङ्कार। मुझको देखो। मेरे रहने के लिये जमीन का फर्श और आसमान की छत है। मैं न कुछ पढ़ता हूँ न लिखता हूँ। आकाशबाणी सुनता रहता हूँ। प्रकृति बक बक नहीं करती, न उसमें शास्त्रार्थ की आदत है। वह सादी है और चुप रहना पसन्द करती है। मैं प्रकृति हूँ। मैं साक्षात प्रकृति हूं। दुनियाँ मुझको मूर्ख कहती है। प्रकृति या प्रकृति की सच्ची तसबीर को जो मूर्ख कहेगा वह सिवाय मूर्ख बनने के और क्या बनेगा! प्रकृति को अन्धी कहने वाले आप अन्धे हैं। प्रकृति को जो लोग अनसमझ और धोका देने वाली कहते हैं वह स्वयं मूढ़ हैं और वैसा ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं।”

दोहा

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय॥

"अब तुम सोचो ! आदमी क्या करता है ! वह औरों को धोका देता है । दूसरे का देश धन माल छीनता है । औरों को स्वार्थ साधन के लिये हानि पहुंचाता रहता है। फिर क्यों न वह आप भ्रम में रहे ! क्यों न उसे दुख उठाना पड़े ! और फिर वह क्यों न मौत के पंजे में फँसे ! इसी को लोग आज कल सभ्यता समझ रहे हैं। यह तुम्हारे पढ़ने लिखने का फल है। इस पर भी तुम्हारी यह इच्छा है कि सचाई मिल जाये ! जो जैसा करता है वैसा पाता है ! जैसा कहता है वैसा सुनता है ! जैसा सोचता है वैसा होता है ! मन बुद्धि और हाथों को पहिले पवित्र करलो, पीछे सचाई की मूर्ति का दर्शन करो । वह बराबर आंखों के सामने है ।"

दोहा

जिन पावों भुईं बहु फिरे, घूमे देस बिदेस ।
पिया मिलन जब होइया, आँगन भया बिदेस ।"

(परमसंत कबीर साहिब)

मूर्ख दो चार मिनट के लिये चुप हो गया । फ़िलोस्फ़र की दशा कुछ न पूछिये। वह विचार सागर में गोते खाने लगा ।

(६) सचाई का दर्शन

मूर्ख ने कहा—"धन्य है मनुष्य की बुद्धि ! गुलाब की पंखड़ियों को नोंच कर उससे शकुन (शगुन) विचारे जाते हैं । पढ़े लिखे विद्वान और फ़िलोस्फ़र भी मनुष्य के विश्वास के साथ यही सलूक करते हैं। सबको तोड़-मरोड़ कर रख देते हैं और उनके मुर्दों का अपने घरों और पुस्तकालयों में ढेर लगा देते हैं। यही आज कल की सभ्यता का आदर्श है कि

धार्मिक पुरुषों और आचार्य्यों को गालियाँ सुनाते फिरें, हर एक धर्म और पन्थ को बुरा भला कहते रहें। यह मनुष्य हैं या हत्यारे हैं! इनके दिल में सचाई कैसे बस सकती है! वहाँ तो बुरी भावनायें, बुरे विचार और सैकड़ों वर्ष की सड़ी हुई लाशों की दुर्गन्ध भरी रहती है। पुस्तकालयों में इन मुर्दों की ठटरियों के सिवा और क्या है? तुम सच्चे और खिले हुए गुलाब से काम नहीं लेते, कागज़ की तसवीर के गुलाब से कमरे सजाते हो। जीवित महान पुरुषों की इज्जत नहीं करते, मुर्दों की कब्रों से सर टकराते रहते हो! जीती जागती किताब तो कभी पढ़ते नहीं, न हाथ ही लगाते हो। जब देखो मुर्दों की किताब और मुर्दा किताबों से सम्बन्ध रखते हो। तुम आप सोचो मुर्दों के पूजने वालों को सचाई कब मिल सकती है? सचाई तो जीती जागती वस्तु है जिसे मृत्यु का भय ही नहीं है। मुर्दों की हड्डियाँ सड़ती हैं। उनके सड़े गले माँस से दुर्गन्ध आती है और तुम न केवल उसी को सूंघते हो किन्तु उसी से अपना पेट भी भरते हो। कहो आजकल की सभ्यता इन्हीं बातों में है या नहीं?"

फिलोस्फर—यह खरी खरी बातें सुन कर दंग रह गया। "फिर बतलाइये सचाई क्या है?"

मूर्ख—"क्या तुमने अब भी नहीं समझा? प्रकृति की जीती जागती तसवीर में तुम्हें प्रकृति का भेद बतलाया। अब तक भी वह तुम्हारी समझ में न आया। प्रकृति 'सत्' है तुम 'सत्' बनो और 'सत्' का जीवन ग्रहण करो। प्रकृति 'चित्' है। तुम 'चित्' बनो और 'चित्' का जीवन ग्रहण करो। प्रकृति 'आनन्द' है। तुम 'आनन्द' बनो और 'आनन्द' का जीवन ग्रहण करो। सचाई 'सच्चिदानन्द' है। तुम भी वस

समय 'सच्चिदानन्द' हो जाओगे जब इस बुरी सभ्यता, बुरे विचार, भ्रम और भ्रान्ति को छोड़ कर प्रकृति के साथ साथ चलने लगोगे जिसको शाक्तिक 'शक्ति' कहते हैं। तब समझोगे कि यह प्रकृति ही शक्ति है। अपना ब्रह्माण्ड आप रचो और जीवित ब्रह्माण्ड की तरह रहो। फिर सचाई तुमसे कभी अलग न होगी।

(७) मस्ती की धुन

दोनों चुप हैं। बातचीत बन्द है। मूर्ख अपने आप में मस्त होकर गाने लगा:—

छन्द

तेरी काया में सत् कर्तार, भटका क्यों खावे ! (टेक)
काया में रहे माया दाया, काया स्वर्ग दुआर। भटका० ॥
काया सोध सोध निज काया, काया का भेद अपार। भटका०॥
काया निर्गुन सगुन है काया, काया ब्रह्म विचार। भटका० ॥
काया मद्दे सहस्र कमल दल, काया में ओंकार। भटका० ॥
सुन्न महा सुन्न काया रहते, काया सोहंसार। भटका० ॥
सत्त पुरुष काया के बासी, अलख अगम का द्वार। भटका०॥
राधास्वामी चरन-शरन बलिहारी, काया है टकसार। भटका०॥

शब्द समाप्त होने के साथ ही मूर्ख उसी तरह हँसते हुये पहाड़ की किसी वादी में जाकर छुप रहा। फ़िलोस्फ़र की कुछ न पूछिये। इतना लज्जित हुआ जैसे उस पर सौ मन पानी पड़ गया था। फिर उस दिन से उसकी खोज का सिलसिला सदैव के लिये बन्द होगया। शक्ति माता ने आप प्रगट होकर मूर्ख के रूप में उसको उपदेश दिया। इसके पीछे उसके जीवन का क्या हाल हुआ न हम जानते हैं और न उसके जानने की आवश्यकता है।

दोहा

कहना था सो कह चुके, अब कुछ कहा न जाय।
सिन्ध समाना बुन्द में, दरिया लहर समाय॥

तीसरी तरंग

तीन बन्द

(१)

एक पारसी कवि का कथन है "चुप रहने से बढ़कर और कोई बात मुझे पसन्द नहीं आती। यह एक ऐसी अवस्था है जिसकी व्याख्या कहने और सुनने में नहीं आती।" वास्तव में यह बचन विचारने ही योग्य है।

मनुष्य बोलता हुआ पशु है। यहां सब बोलते हैं और बोलने ही का उपदेश सुनाते रहते हैं परन्तु यह कवि चुप रहने की शिक्षा देता है। बात क्या है? किसकी सुनें और किसकी न सुनें? बोलना भी तरह तरह का है।

दोहे

बोली तो अनमोल है, जो कोइ जाने बोल।
हिये तराजू तोल कर, तब मुख अपना खोल॥ १॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपो सीतल होय॥ २॥
सहज तराजू आनकर, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ रस, जो कोई जाने बोल॥ ३॥
शब्द बराबर रस नहीं जो कोइ जाने बोल।
हीरा तो दामों बिकै, शब्द का मोल न तोल॥ ४॥

बोलना इस तरह का कहलाता है। बुद्धिमान इस तरह के बोलने में हर्ज नहीं समझते। यह सुशिक्षित और सभ्य होने का प्रमाण है। ऐसी बात कभी भी नहीं बोलनी चाहिये जिससे दूसरों का दिल दुखे या विष की बुझाई हुई गाँसी की तरह कलेजे में घुस कर उसको जलादे। ऐसा बोलना जलती हुई आग की चिंगारियों के समान है जो पहिले बोलने वाले के हृदय में भड़कती हैं और फिर दूसरों के दिलों में आग लगा देती हैं। गाली, निन्दा, दोषारोपण और दुर्वचन ही के कारण लड़ाई झगड़े की नौबत आती है, घर नष्ट हो जाते हैं और देश बरबाद हो जाते हैं। यह एक प्रचण्ड ज्वालामुखी है जो दूर निकट हर जगह की बस्तियों, वाटिकाओं और आबादियों को जलाकर राख कर देती है।

गार अँगारा क्रोध झल[1], धूआं निन्दा होय।
इन तीनों को परिहरै[2] साध कहावै सोय॥ १॥
आवत गाली एक है, उलटत होय अनेक।
कहैं कबीर ना उलटिये, वही एक की एक॥ २॥
गाली सों सब ऊपजै, कलह कष्ट और मीच[3]।
हार चलै सो संत है, लाग मरै सो नीच॥ ३॥

प्रिय और अप्रिय बचन दोनों की तसवीरें आँखों के सामने आ गईं। एक से चित्त प्रसन्न होता है और दूसरा कलेजे में घाव करता है। एक में प्रेम और दूसरे में घृणा है। एक इतना बलवान है कि यदि चाहो तो उसकी सहायता से सारे संसार को जीत कर अपना बना लो और दूसरे में इतनी अबलता है कि अपने हाथ का माल भी जाता रहता है। उसके कारण अपने भी पराये हो जाते हैं।

(१) आग की लपट (२) छोड़ दे (३) मौत।

दोहा

कागा का से लेत हैं, कोइल काको देइ।
मीठे बैन सुनाय कर, जग अपना कर लेइ॥
(परम संत कबीर साहिब)

कांय कांय करने वाले कौवे न किसी से कुछ लेते हैं और न कोइल किसी को कुछ देती है, केवल मीठी बोली सुनाकर वह दुनिया को अपना बना लेती है।" यह इन दोनों में भेद है। दोनों की बोलियाँ केवल शब्द ही हैं। वह शब्द से भिन्न नहीं हैं परन्तु दोनों के दो नतीजे देखते हो। दोनों ही मुँह से निकलती हैं। दोनों शब्द एक ही ढंग से निकलते हैं परन्तु भाव और नतीजों में भेद है।

दोहे

शब्द शब्द सब कोई कहै, शब्द के हाथ न पाव।
एक शब्द औषध करै, एक शब्द करै घाव॥ २॥
एक शब्द सुखरास है, एक शब्द दुखरास।
एक शब्द बन्धन कटै, एक शब्द गले फाँस॥ ३॥

अब तुम क्या पसन्द करते हो? अच्छा बोलना या बुरा बोलना? सभ्य मनुष्य अच्छे बोलने ही को उत्तम समझेगा। मनुष्य कितना ही बुरा क्यों न हो फिर भी बुराई की अपेक्षा भलाई को अच्छा ही समझेगा। सभी कहते हैं कि अच्छा बोलो, बुरी बातें मुख से न निकलने पायें परन्तु कवि अपनी बेसुरी अलाप अलापते हुये स्पष्ट शब्दों में कह रहा है कि मुख को बन्द कर रक्खो, न अच्छा कहो न बुरा। क्या इसका यह अर्थ है कि अच्छा कहना भी सम्भव है किसी को बुरा लगे या किसी का जी दुखी हो। अजी नेकी और भलाई अच्छी ही सही परन्तु ऐसे भी तो हज़ारों मनुष्य मिलेंगे जो

तुम्हारी भलाई को देख कर जलेंगे। यदि तुम सच ही बोलते हो तो क्या इस सच से यदि किसी को लाभ होता है तो दूसरे को हानि न पहुँचेगी। जहाँ लाभ है वहाँ ही हानि है। एक की सहायता करना दूसरे को हानि पहुंचाना है। यह संसार विचित्र स्थान है जिसकी सारी बातें सोचने और समझने के योग्य हैं। चुप रहने का उपदेश कवि इसीलिये कर रहा है कि चुप रहने से न किसी का बुरा होगा न भला होगा। नहीं! नहीं!! तुम बहुत दूर निकल गये, भूले और बुरी तरह से भूले।

आओ अब इस चुप रहने के विषय को तुम्हें अच्छी तरह से समझादें परन्तु सावधान रहना, भूल और भ्रम में न पड़ना क्योंकि यहां पग पग पर ठोकरों का भय है। केवल तत्व को समझो, शब्दों के गोरख धन्दों में फँसने से बचते रहो।

प्राचीन काल से ऋषि मुनि, साधु, महात्मा सब कहते चले आरहे हैं कि जीवन के तीन रास्ते हैं। एक बहुत ही अंधेरा है जिसमें केवल कीड़े मकोड़े चल सकते हैं। न तो इनका कोई आदर्श है और न आदर्श के समझने की बुद्धि है इसलिये यह घूम फिर कर जहाँ के तहां पड़े रहते हैं। दूसरी राह बहुत खुली हुई है। उसमें प्रकाश और अन्धकार दोनों मिले जुले हैं। कहीं प्रकाश अधिक है और कहीं कम परन्तु राह के सुहावने दृश्य दिल को अपनी ओर खींच लेते हैं और मनुष्य उन्हीं में फँस जाता है। ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ता जाता है त्यों त्यों वह राह न केवल तंग होती जाती है किन्तु प्रकाश भी धुँधला होता जाता है। आगे चलकर ऐसा समय आजाता है जब घुप अँधेरे में हाथ को हाथ नहीं सूझता और राह चलने वाला घबरा जाता है। इस राह को शास्त्रकार 'प्रेय' मार्ग अर्थात् प्यारा रास्ता बताते हैं। यह भोग बिलास का

पन्थ है। तीसरा रास्ता 'श्रेय' मार्ग है। यह पहिले पहिल तंग और अँधेरा दिखलाई देता है परन्तु इस में यह विचित्र बात है कि यदि साहस और निश्चलता के साथ एक बार इस में घुस जाओ तो फिर आगे बढ़ने में नित्य ही आनन्द मिलता जायेगा। तंगी दूर होती जायेगी और राह चौड़ी होती हुई मिलेगी। जितना ही तुम आगे बढ़ते हुये चलोगे उतना ही सुख और आनन्द भी घना होता जायेगा। ऊपर की दो राहों को साधू पसन्द नहीं करते क्योंकि इनका परिणाम अच्छा नहीं होता। पहिले में तो चलने वाला पथिक घने जंगल में फँसा फँसाया रह जाता है। दूसरे में ऊपर चढ़ता है परन्तु राह की तंगी के कारण उसे नीचे उतरना पड़ता है और वह गिर पड़ता है। हां, तीसरी राह अच्छी है। जो एक बार कुछ साहस करके उसमें आया तो चाहे उसे पहिले कुछ दुख प्रतीत होता हो परन्तु शीघ्र ही उसे विशेष आनन्द मिलने लगता है और इसी से उसका उत्साह नित्य ही बढ़ता जाता है। अन्त में वह मस्ती और प्रेम से झूमता हुआ किसी न किसी दिन अपने आदर्श तक पहुँच ही जाता है। यह अच्छी राह है। इस में कुछ भी सन्देह नहीं है परन्तु आपत्तियों से खाली यह भी नहीं है। भेद केवल इतना है कि पहिली राह में पहिले सुगमता है और फिर कठिनाइयाँ हैं। इस में पहिले ही थोड़ी सी कठिनाई है फिर आनन्द ही आनन्द है और इसी कठिनाई को हम आपत्तियाँ कह रहे हैं।

यह आपत्तियाँ क्या हैं? बोलना, सुनना और देखना। जिनमें यह बातें होंगी वह इस राह में आने के योग्य न समझे जायेंगे। यदि औरों की देखा देखी कोई इस राह में आना चाहेगा तो काँटेदार पगडंडी को देखकर उसकी हिम्मत जाती रहेगी और वह उसमें जाने का साहस न कर सकेगा। यदि

तुम जुबान से बहुत बोलते हो तो तुम्हारी मानसिक शक्ति (दिली ताक़त) का पानी जिह्वा की राह से रस रस कर बाहिर निकल जायेगा और अन्त में कमजोर हो जाओगे। यदि तुम औरों की बातों को सुनते हो तो उनका प्रभाव तुम पर पड़ता जायेगा। अपना कुछ न रहेगा। हाँ, दूसरों के विचार तुम्हारे मन में भरते जायेंगे और तुम कहीं के भी न रहोगे। इसी प्रकार यदि बाहिरी दृश्य में फँसे रहोगे तो तुम्हारे मन का दर्पन उसकी छाया को ले ले कर धुँधला बन जायेगा। बुरी-बुरी भावनायें मन में उत्पन्न होकर तुम्हारी सङ्कल्प शक्ति को धक्के दे देकर दबा देंगी और तुम्हारा पैर उखड़ जायेगा। यह तीन बलायें हैं जो पन्थाइयों को डिगाती धमकाती और दुखी करती रहती हैं। अब तुम आप सोचो कि यह बातें सत्य हैं या असत्य? जो बोला वह मारा गया। जिसने औरों की बात सुनी वह बहक गया। जिसने इधर उधर के दृश्य को देखा वह राह से बे राह होगया। नज़र को सीधी रखना है और केवल नाक की सीध में चलना है। पन्थाई को दायें बाये मुड़ने की आज्ञा नहीं है। यदि उसने इस नियम का पालन किया तब तो वह सच्चा अधिकारी बना और यदि बहका तो भ्रम और भ्रान्ति के दल दल में जा फंसा। फिर उसका ठौर ठिकाना नहीं रहता।

गुरु नानक साहिब की वाणी है—

दोहा

तीन बन्द लगाय कर, सुन अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाध में, नहिं सांझ नहिं भोर॥

इसलिये इन तीनों पर बन्द लगाओ। इनको रोक रक्खो। यदि तुम इतना कर लेते हो तो निश्चय रक्खो कि आदर्श तक

बेखट पहुँच जाओगे। यदि इस उपदेश को नहीं मानते तो फिर तुम भी उन्हीं पहिले कहे हुये दो राहों पर चलोगे जिनका परिणाम अच्छा नहीं होता।

हमने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में तुमको देखने, सुनने और बोलने के दोष समझा दिये। सम्भव है इतनी सफाई के साथ आज तक यह बातें किसी ने तुमसे न कही हों। अब सुनलो और सुन कर उनको दिल में जगह दे लो। यदि तुम अपने पहले जन्म के पुण्य प्रताप से संत मत में आ गये हो तो यह फिर भी तुम्हारे लिये लाभदायक होंगी और यदि अब तक ऐसा अवसर नहीं मिला है तो यह कान में पड़ी हुई बातें कभी न कभी काम आ जायेंगी।

इन तीन इन्द्रियों के रोक रखने को पन्थाइयों के यहां तीन बन्द लगाना कहा जाता है।

(३)

परम संत कबीर साहिब की बाणी है—

दोहा

चलो चलो सब कोइ कहै, बिरला पहुँचे कोय।
एक कनक और कामिनी, दुर्गम घाटी दोय॥

हम क्या सुनते हैं, क्या देखते हैं और क्या बोलते हैं? इस पर क्या कभी तुमने विचार भी किया है? हम धन और विषय भोग की बातें सुनते हैं। हम धन द्रव्य और स्त्री के रूप को देखते रहते हैं और दिन रात इन्हीं के सम्बन्ध में बातचीत भी किया करते हैं। यही दोनों मुख्य और मूल हैं बाकी और सब इसकी शाखायें हैं। सारी बुराइयों की जड़ यही दो वस्तु हैं। सोचो समझो और विचारो कि हम सच कह रहे हैं या झूठ।

दोहा

एक कनक और कामिनी, बहु फल किये उपाय।
देखे ही ते विष चढ़ै, चाखत ही मर जाय ॥ १ ॥
एक कनक और कामिनी, तजिये भजिये दूर।
गुरु बिच डारै अन्तरा, जम देवे मुख धूर ॥ २ ॥
तजो कनक और कामिनी, यह सतगुरु की साख।
विष फल फले अनेक हैं, मत कोई देखो चाख ॥ ३ ॥

यह काम क्या है ? यह भोग विलास क्या है ? बड़े ही शोक की बात है कि इस पर कोई विचार नहीं करता ! और विचार न करने के कारण सब कुयें में मुँह के बल गिरते चले जा रहे हैं।

दोहा

काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय ॥

मर गये वह लोग जो इस गढ़े में आकर गिरे। उनकी हड्डियाँ चूर चूर हो गईं और नाम मात्र के लिये भी उनका पता नहीं रहा।

दोहा

नारी नदी अथाह जल, बूड़ मुआ संसार।
ऐसा साधू ना मिला, जा सँग उतरूँ पार ॥

इसी काम के वशीभूत होकर रावण ने अपने दस सर और बीस भुजायें कटवादीं। कुल का नास करा दिया। सोने की लङ्का राख होगई। इसी काम के पीछे बालि जैसा महा-बलवान पुरुष राम के तीरों से मारा गया।

दोहा

पर नारी पैनी छुरी, मत कोइ करो प्रसंग।
दस मस्तक रावण गये, पर नारी के संग ॥१॥

कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संशय सूल।
और गुनाह सब बखशिहौं, कामी डाल न मूल ॥२॥
नारी निरख न देखिये, निरख न कीजै दौर।
देखे ही तें विष चढ़ै, मन आवै कुछ और ॥३॥

यह काम है। अधिक क्या कहें। हर मनुष्य इसे कुछ न कुछ जानता है। अब द्रव्य के विषय में सुनिये। यह बहुत ही बुरी बला है। जो इसके झटके में आया वह रसातल को चला गया और फिर उसका पता न लगा।

दोहा

माया दीपक नर पतंग, भ्रम भ्रम माँहिं परन्त।
कोई एक गुरु ज्ञान से, उबरे साधू सन्त॥

धन के लिये जान देने वाले छोटे छोटे आदमियों से डरते रहते हैं—चोर का डर, पुलिस का भय, सम्बन्धियों की नोच खसोट, पड़ोसियों का द्वेष, तरह तरह के दुख और कष्ट—स्वप्न में भी शान्ति नहीं मिलती।

माया तरुवर त्रिबिधि का, दुख सुख और सन्ताप।
सीतलता सपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥१॥
कबीर जग को क्या कहूँ, भव जल बूड़े दास।
सत्तनाम पद छोड़कर, करैं मनुष की आस ॥२॥

दूर क्यों जाते हो अपनी हालत और अपने पड़ोस में रहने वाले धनवान मनुष्यों की दशा को देखो। आप ही समझ जाओगे। धन इसलिये है कि उससे काम निकाला जाये न कि उसको अपना गला फँसाने की ज़ंजीर बनाई जाये।

यह दो गहरी घाटियाँ हैं जिन में आदमी गिरकर कुत्ते की मौत मरता है और जीवन के आदर्श से हाथ धो बैठता है।

(४)

इन दोनों से चित्त की वृत्ती को हटा कर तब इस राह में आओ। जब तक यह वासनायें रहेंगी तब तक सचाई का परदा कभी न उठेगा और न उसकी असलियत समझ में आयेगी।

इनके दूर करने का उपाय है कि इन तीन इन्द्रियों पर बन्द लगाया जाये। यह नहीं कहा जाता कि कोई अन्धा बन जाये, आँखों को फोड़ ले, कानों में ठेंठी भर ले और जुबान को कटा ले। पहिले यह बात समझ लेनी चाहिये कि हम इस संसार में केवल इन्हीं तीन इन्द्रियों के कारण फँसे हैं। यह मुख्य हैं। दूसरी इन्द्रियाँ गौण हैं। वह इतनी दुखदाई भी नहीं हैं। इन्हीं तीनों इन्द्रियों के कारण उन में क्रिया शक्ति आती है। आँख देख कर, कान सुन कर, जुवान बोल कर दिल के लिये उभारने का सामान पैदा करती है। बाहिर के भाव इन्हीं के द्वारा मन में भरते जाते हैं। बस इतना ही करना है कि यह बहुत बहकने न पायें। यह न बहकेंगी तो मन भी न बहकेगा। इन्हें वश में लाने को संस्कृत में 'दम' कहते हैं। 'दम' का अर्थ है—वश में करना। इनको वश में करलो तो मन में शान्ति आजायेगी। मन की शान्ति को संस्कृत में 'शम' बोलते हैं। यों समझो—मन एक तालाब है और यह तीनों इन्द्रियां उसके सूराख (छेद) हैं जिनका मुँह बाहर की ओर खुला हुआ है। इन छेदों से बाहर की हवा उसके अन्दर लगती है और मन के तालाब के पानी में हिलकोरे उठने लगते हैं। यही हिलकोरे वृतियां कहलाती हैं और अवसर पाकर बाहर की ओर दौड़ती हैं। यदि छिद्र बन्द होजायें तो फिर यह दशा न हो और न मन इतना चंचल हो। जब उसमें चंचलता न होगी तो आप ही आप शान्ति आजायेगी और

शान्ति आने के साथ ही उसमें सचाई की झलक पड़ने लगेगी। जहाँ यह अवस्था हुई फिर यह मन कुछ और ही बन जायेगा और सचाई का परदा भी उठ जायेगा। तब फिर क्या होगा? मरने जीने की गुत्थी सदैव के लिये सुलझ जायेगी और मनुष्य को जन्म मरन के दुख और संसार के तीन तापों से छुटकारा मिल जायेगा। दुखों से सदैव के लिये मुक्ति पाना ही परम पुरुषार्थ और जीवन का सच्चा आदर्श है। यही निर्वाण है, यही कैवल्य है, यही परम पद है जिसकी व्याख्या हम ने बहुत ही संक्षेप परन्तु स्पष्ट रूप से की है।

(५)

अब सवाल यह है कि यह तीन बन्द कैसे लगाये जायें। बहिर्मुखी होना मनका स्वभाव हो गया है। उसको बाहर के जगत में रस मिलता है। वह रसिया है। कोई रसिया रस की चाट को सुगमता से कैसे छोड़ने लगा! कहने को तो चाहे रात दिन बातें बनाया करे परन्तु पता उस समय लगता है जब मन को बश में लाने का सवाल आता है। ज्ञानी ज्ञान के कथन में लगा। मन अपने स्वभाव के अनुसार इन्द्रियों के विषय की ओर लेगया। ध्यानी ध्यान लगाने बैठा। मन में विषय की तरंगें उठने लगीं। कहाँ का ध्यान! कैसा ज्ञान! सब धरे का धरा रह गया। मन चढ़ा था आसमान पर और गिरा तो नीचे कीचड़ में लथपथ हो गया। यह एक साधारण बात है जिसे थोड़ी समझ बूझ का आदमी भी समझ सकता है। इसलिये पहिले इस मन को समझा बुझाकर तब इस काम की ओर ध्यान देना चाहिये।

दोहा

बात बनाई जग ठग्यो, मन परबोध्यो नाहिं।
कबीर यह मन ले गया, लख चौरासी मांहि॥

न 'दम' हुआ न 'शम' हुआ। परिश्रम निष्फल गया। ज्ञानी जिन्होंने योग का साधन नहीं किया है ब्रह्म ब्रह्म चिल्लाते रहते हैं। कोई कोई खयाली मस्ती के नशे में थोड़ी देर के लिये चूर भी होजाते हैं परन्तु इनका भी परिणाम वही होता है और मन किसी समय ऐसा धक्का दे बैठता है कि यह नाच उठते हैं और किसी के सँभाले नहीं सँभलता।

दोहा

अलमस्त फिरे क्या होत है, सुरत लीजिए धोय।
चतुराई नहि छूटसी, सुरत शब्द में पोय॥ १॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं शब्द समाय।
कोटिन गुन सूआ पढ़ै, अन्त बिलाई खाय॥ २॥

लो बात बात में युक्ति भी बता दी गई। **सुरत शब्द योग** का अभ्यास करो। आँख कान जुबान को बाहर की ओर से बन्द करो। पहिले उनको अन्दर की ओर खोलो। यहां मन को अन्तर में अपूर्व सुख और आनन्द मिलेगा। यदि वह रसिया है तो अन्तर जाकर रस ले। रोकता कौन है? अन्तर में तो और भी विचित्र रस है। बाहर की ओर से इन्द्रियों के द्वार बन्द और अन्तर की ओर खुल गये। आँख अन्तर में प्रकाश देखती है। कान अन्तर के शब्द सुनते हैं। जिह्वा अन्तर का नाम जपती है। तीनों के लिये तीन काम मिल गये। अब तो मानेगा कि अब भी नहीं? इधर से हटे उधर को लगे। अहा हा! कैसे विचित्र दृश्य दिखलाई दे रहे हैं! कैसा अच्छा तमाशा है! साथ ही कैसे सोहावने बाजे बज रहे हैं कि दिल आनन्द में मग्न होकर बल्लियों उछल जाता है और फिर किस आनन्द और चैन के साथ अजपा जाप हो रहा है। सुरत सनसनाती हुई ऊपर की ओर उठी और आसमान पर जा पहुँची। सच तो यों है कि आसमान

को भी पैरों के नीचे दबा लिया और ऊँचे ऊँचे मण्डलों की सैर करती हुई ऊपर को चली।

दोहा

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के मांहि।
सुरत शब्द मेला भया, मुख की हालत नांहि॥

इसे कर तो देखो फिर पीछे कहना। यह सिड़ी सौदाई की बात नहीं है। साधु संत, पीर पैग़म्बर, वली नबी सब ही ऐसा कर रहे हैं। इस विषय में सारे पन्थाई सहमत हैं। हम भी सुनी सुनाई बातों से सम्बन्ध नहीं रखते। अपना अनुभव तुम से कह रहे हैं परन्तु जब तक तुम आप करके न देखो तुमको विश्वास कैसे आये!

सुनो! स्वप्ना अवस्था में जो कुछ तुम देखते हो अपने अन्दर ही तो देखते हो। तुम उस समय बाहर कब जाते हो! हां, वह हालत बेबसी की है। हम तुम से कहते हैं कि अभ्यास द्वारा तुम स्वाधीनता के साथ सचेत होकर वहां चले जाओ और वहां के अपूर्व दृश्यों को देखो। कौन जाने स्वप्न में बेबसी तुम को कहाँ ले जाती है। स्वाधीन बनो और राह रिकाना का पता लेकर अपने अन्तर में धँसो। जागृत में स्वप्न का और स्वप्न में जागृत का तमाशा देखो।

जब कुछ ऊपर की ओर चलोगे दूसरी आवाज़ सुनाई देगी और वह तुम्हारे स्वागत के लिये आगे बढ़ेगी। तुम भी ख़ुशी ख़ुशी पाँव बढ़ाते और लम्बे लम्बे डग भरते हुये उससे मिलने के लिये आप आगे बढ़ोगे।

यह हमने तुमसे पहिले ही कह दिया है कि इस 'श्रेय' मार्ग में जो आया वह फिर वापस नहीं जाता और न फिर उसको जन्म मरन का खटका रहता है। हां, आने, घुसने और

धँसने की देर है।

(६)

जिज्ञासू सवाल करता है कि "जब अन्तर में तीन इन्द्रियां काम करने लग गईं तो फिर उन पर बन्द कहां लगा ? हालत तो जैसी पहिले थी वैसी ही अब भी रही। केवल स्थान बदल गया।" यह बात ठीक है। पहिले तो जिज्ञासू को यह विश्वास कराना आवश्यक है कि अन्दर में यह हालतें पैदा होती हैं। प्रमाण, अनुमान और शब्द तीन प्रकार के ज्ञान संसार में होते हैं। प्रमाण तो इन्द्रियों का ज्ञान है। देखना सुनना, चलना, यह प्रमाण ज्ञान है। अन्दाज़ा लगाना, नतीजे को देखकर कारण को सोचना या विचारना अनुमान कहलाता है। इसका सम्बन्ध मन से है। शब्द है गुरू का बचन और आप्त पुरुष का कथन जो हर दशा में मानने के योग्य है। बाहरी जगत् में तो ज्ञान इस तरह प्राप्त होता है। अन्तरीय जगत् में इनके संस्कार मन में रहते हुये अपना काम करते हैं। अन्तरीय जगत में दूसरी इन्द्रियों का अभाव तो नहीं होता परंतु तीन इन्द्रियाँ आंख, कान और जिभ्या सब से प्रबल रहती हैं। वहाँ भी उनका वही स्थूल रूप रहता है जो यहाँ है। आँख कान और जिभ्या तीनों अपना काम करते हैं। ऊँचे मण्डलों और देव लोक में भी इनकी प्रबलता रहती है। साथ ही मन अनुमान करता रहता है। भेद इतना ही है कि कान जहां और शब्दों को सुनता है साथ ही उस शब्द को भी सुनता है जो गुरू या आप्त पुरुष ने बताया है। आंख जहां और दृश्यों को देखती है, साथ ही उस प्रकाशमय वस्तु को भी देखती है जिस की आशा दिलाई गई है। जुबान सिवाय अजपाजाप के किसी से सम्बन्ध नहीं रखती। धीरे धीरे इधर से चुप हो जाती है और उधर एक काम करती रहती है और मन में लय हो जाती

है। आँख और कान वही देखते और सुनते हैं जिसका उपदेश दिया गया है। जुबान बन्द है। आँख को दूर से चिराग़ की रोशनी दिखलाई दे रही है। कानों को घंटे की आवाज़ दूर से सुनाई दे रही है। जुबान तो मन के साथ मिली हुई किसी विशेष काम में लीन है। सुरत की धार बताये हुये स्थान की ओर जा रही है। तुमने देखा होगा सन्ध्या समय जब मन्दिर में आरती होती है तो मन्दिर का चिराग़ ही दिखाई देता है और घंटे का शब्द ही सुनाई देता है। चिराग़ की रोशनी पर टकटकी लगाकर देखो। वह क्या है? हजारों रोशनी की धारों का केन्द्र है। दूर से दृष्टि जमाने पर उसकी बिखरी हुई धारें प्रतीत होती हैं क्योंकि हर समय धारों ही की रचना है। घंटे या शंख की आवाज़ भी इसी तरह लगातार सुनाई देती है। तुम चले और चिराग की रोशनी तुम को बुलाती हुई आनन्द के साथ तुम्हारा स्वागत भी कर रही है। तुम फाटक पर पहुँच गये। लो पहिली मंजिल तै होगई। अब तुम आगे के स्थानों में जाने के अधिकारी बन गये। जिस तरह कालेज में जाने के लिये एन्ट्रेन्स पास करना आवश्यक है वैसे ही यहाँ भी है। एन्ट्रेन्स का अर्थ ही दाखिल होने का फाटक है। जुबान गूँगी बनी हुई बिसूर में है परन्तु देखने ही में चुप है और उस पर बन्द लगा हुआ है। अन्तर में वह अपना काम कर रही है। अब मन्दिर में घुसो। मन्दिर क्या है? यह तुम्हारा सर ही तो मन्दिर है। क्या तुम नहीं देखते कि शिव जी के मन्दिरों के गुम्बद (मन्दिर का ऊपरी और गोला हिस्सा) आदमी के सर की तरह पोले, खोखले और पूजन के सामान से भरे रहते हैं। यह मन्दिर असली मन्दिर की नक़ल हैं। सच्चा और असली मन्दिर तो तुम्हारा सर है जहाँ असली बिशेश्वरनाथ बिराजमान हैं। नक़ली मन्दिर ईंट और पत्थरों के हैं जहाँ

विशेश्वरनाथ की नकली मूर्ति गोलाकार और लिङ्गाकार स्थापित की गई है। मन्दिर के बीच में एक तिरकोनी वस्तु तुम्हें मिलेगी। इसको 'त्रिकुटी' कहते हैं। विशेश्वरनाथ गुरू की प्रकाशमय और लाल रंग की दमकती हुई प्रतिमा दिखलाई दे रही है। उसका दर्शन करो। साथ ही जहाँ तुम दूर से घंटे और शंख की आवाज सुन रहे थे अब मृदंग या पखावज या मेघनाथ के शब्द को दिल दो। यह अन्तरीय शब्द हैं। कोई इसको 'ॐ' 'ॐ' कहता है। कोई 'बम' 'बम' बोलता है। मुसलमान फकीर इसको 'हू' 'हू' कहते हैं और गुरु नानक साहिब के अनुयाइयों ने इसी को 'वाह गुरू' कहा है। यह गुरु ही का स्थान है। यही ब्रह्म है। जो यहाँ आया वह सच्चा गुरु मुख बना। जो नहीं आया उसने अभी तक सच्चे अर्थों में गुरु का दर्शन नहीं प्राप्त किया। वह अब तक मनमुख है। यहाँ आते ही ध्यान ज्ञान की समाधि की अवस्था प्राप्त होती है। इस समाधि में एक प्रकार का अन्धकार है। घटा टाप अँधेरा है। हाथ को हाथ नहीं सूझता। इस अवस्था का नाम 'सुन्न' है और महासुन्न' है। यह परब्रह्म पद है। यह शून्यवादी बौद्धों का धुरपद है।

आँखों पर भी बन्द लग गई। उत्साह से काम में लगो जिसमें आत्मपद की सच्ची सफेद रंग की झलकती हुई रोशनी तुम्हारे अन्दर से प्रगट हो। लो वह प्रगट भी हो गई। यहाँ न वह जुबान रही न आँख ही रही। दोनों का शारीरक रंग रूप जाता रहा। अब वह आत्मिक (रूहानी हो गई। हाँ, कान खुले हुये हैं। उनको 'ओ३म्, की आवाज से ऊपर कुछ और तरह के धार वाले शब्द सुनाई दे रहे हैं। उन पर शारीरक बन्द तो लग गया रूहानी बन्द बाकी है। आगे बढ़ो। यह स्थान 'ब्रह्म गुफा, है। यह 'स्वस्तिक, है।

स्वस्तिक संस्कृत शब्द 'सु' (अच्छा) और 'अस' (होने) से निकला है। हिन्दू अपने घर के दर दीवार, मन्दिरों, और पूजन के सामानों में ऐसा चिन्ह बनाया करते हैं। संस्कृत कोष देखो। वह तुम्हें बतायेगा कि चार सड़कों के एक जगह मिलाप का नाम स्वस्तिक कहलाता है। ब्रह्म और परब्रह्म बिखरी हुई और फैली हुई हालतों का नाम है। सुन्न के स्थान में चार तरह की आवाजें सुनाई देती हैं। यदि तुमने अभ्यास के समय सुना है तो क्या कहना है ! और यदि नहीं सुना तो सन्तों की बाणी पर विश्वास करो। **सत् पुरुष राधास्वामी** की पवित्र वाणी है। "बानी चार गुप्त जहाँ रहती।" यह स्वस्तिक चक्र है। यही 'भँवर गुफा' है। यहां से भी अंतरीय शब्द निकलते हैं। ब्रह्म की उत्पत्ति यहाँ ही से होती है। जैसे इसका नाम 'स्वस्तिक' और 'भँवर गुफा' है वैसे ही इसके अन्दर से बांसुरी की आवाज के रूप में 'सोहं' 'सोहं' शब्द निकलता रहता है। आगे बढ़कर 'सत लोक' 'सत मन्दिर' और 'सत् धाम' आता है। यहां बीन की आवाज में 'सत्' 'सत्' 'हक्' 'हक्' की आवाज निकलती रहती है। यह पूर्ण स्थान है। यहां पूर्ण बीन अपना पूर्ण राग सुना कर कानों पर समाधि की मुहर लगा देती है। यह सबसे ऊँचा धाम है। यही सन्तों का धुर स्थान है। यहाँ न रंग है न रूप है न रेखा है। **सत् पुरुष राधास्वामी दयाल** की वाणी है—

जो इतने पद ऊँचे चढ़ै।
रंग रूप रेखा से टरै॥

(७)

तीन बन्दों की व्याख्या कर दी गई है। जिस बात को कोई कहता तक नहीं, हमने उसे स्पष्ट शब्दों में खोल खोल कर

समझा दिया। जिसको तीन बन्द लगाकर आत्म उन्नति करने और संसार के जन्म मरन से छूटने का विचार हो वह इन तीन बन्दों के लगाने का साधन करे। यह संतों, बौद्धों और सूफियों (मुसलमान संत और फ़कीरों) का मार्ग है। और जगह यह इशारों इशारों में बताया गया है। संतों ने इसके अभ्यास का उपदेश बड़ी ही उत्तमता और पूर्ण रीति से बतलाया है। यह ज़ुबानी जमा खर्च की बात चीत नहीं है। जो लोग इस अभ्यास का साधन करेंगे वह जन्म मरन के झगड़ों से मुक्त होकर धुरपद को प्राप्त कर लेंगे जो उनके अन्दर है और उनमें है। जो बातें बनाया करेंगे उनके लिये यह उपदेश नहीं है।

दोहा

कौतुक देखा देह बिन, रवि शशि बिना उजास।
साहिब सेवा मांहि है, बे परवाही दास॥ १॥
पवन नहीं पानी नहीं, नाहीं धरन अकास।
तहां कबीरा संत जन, साहिब पास खवास॥ २॥
धुजा फड़क्कै सुन्न में, बाजै अनहद तूर।
तकिया है मैदान में, पहुँचेगा कोई सूर॥ ३॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोत अनन्त।
संशय छूटा भय मिटा, मिला पियारा कन्त॥ ४॥
उनमुन लागी सुन्न में, निस दिन रहै गलतान।
तन मन की तो सुध नहीं, पाया पद निर्वान॥ ५॥
सुरत समानी निरत में, अजपा मांहीं जाप।
लेख समाना अलख में, आपा मांहीं आप॥ ६॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय॥७॥

संशय करूँ न मैं डरूँ, सब दुख दिये निवार।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार ॥८॥
बिन पावन का पन्थ है, बिन बस्ती का देस।
बिना देह का पुरुष है, कहैं कबीर सन्देस ॥९॥

चौथी तरंग

(शब्द) घट का मन्दिर

मेरे घट का मन्दिर खुल गया (टेक)

गुरु मूरत का दर्शन पाया, जगमग जोत जगाया।
आरति साजी प्रेम भक्ति की, उमगा मन हरखाया ॥१॥
घंटा शंख बजे मन्दिर में, धुन मृदङ्ग की गाजी।
बीन बाँसुरी बजी सारंगी, सुन सूरत हुई राजी ॥२॥
या मूरत की महिमा भारी, उपमा कही न जाई।
चाँद सूरज की चँवरी लेकर, प्रीति के हाथ डुलाई ॥३॥
शेष सहस मुख अस्तुति गावे, ब्रह्मा वेद सुनावे।
शिव के हाथ में डमरू सोहे, विष्नू शंख बजावे ॥४॥
रोम रोम में प्रगटे देवा, सारद इन्द्र धनेशा।
कहिं कमला कहिं दुर्गा नाचे, गावे शब्द गनेशा ॥५॥
गुरु के चरन निरंजन बासा, हृदय ब्रह्म निवासा।
परब्रह्म छवि अद्भुत सोभा, सोहं करै उजासा ॥६॥
सत्त पुरुष लख अलख को देखा, अगम का किया परेखा।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, मिट गया जम का लेखा ॥७॥

पाँचवी तरंग

प्रेम

प्रेम क्या वस्तु है ? यह बड़े से भी बड़ा और छोटे से भी छोटा है और फिर साथ ही न यह बड़ा है और न छोटा है। किसने इसकी असलियत का पता पाया ? क्या कोई छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि मैं प्रेम के तत्व को अच्छी तरह से जानता हूं। मीठे बचन, प्रेम की दृष्टि और आंख के इशारे से आदमी जो चाहे कराले। हाँ, केवल प्रेम होना चाहिये।

एक प्रेमी कुत्ते के साथ रहता हुआ आदमी अपने आप को अकेला नहीं समझता परन्तु प्रेम से खाली हजारों आदमियों के साथ बैठा हुआ भी अकेला है। देखने को हजार दिखलाई दें परन्तु न कोई उसके आगे है न पीछे है। क्या कभी तुम में से किसी ने ऐसी हालतों पर विचार किया है !

बच्चे को एक फूल दे दो। वह तुम्हारा हो गया। किसी को बिना प्रेम के बहुत बड़े राज्य का मालिक बना दो परन्तु वह तुम्हारा नहीं है। अकबर बादशाह बहुत दिनों तक अपने बजीर बीरबल के लिये रोया किया। बीरबल सिवाय बातों के उसको और क्या देता था ! परन्तु वही बादशाह राजा मानसिंह से डरता था और उससे जान बचाना चाहता था। उसने अपनी बहिन तक को दे दिया था। काबुल, दक्षिण और बङ्गाल के सूबों को उस के लिये जान लड़ाकर जीत लिया था। अकबर के लिये अपनी जाति वालों से जीवन पर्यन्त लड़ता रहा। बात क्या थी ? उसमें अकबर के लिये बीरबल जैसा प्रेम नहीं था।

ऋषियों मुनियों ने भगवान रामचन्द्र की बड़ी बड़ी

स्तुति की परन्तु राम उनके पास न ठहरे। शिवरी बातें बनाना नहीं जानती थी। सच्चे प्रेम के साथ जूठे सड़े गले बेर खिला दिये और वह उसी के हो गये।

कृष्ण जी ने दुर्योधन का निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। बिदुर के घर में जाकर बिना नमक का उबाला हुआ साग और केले के छिलकों से अपना पेट भरा। ऐसा क्यों हुआ? प्रेम महा बलवान है। वह जो नाच चाहे नचावे।

धन्ना भक्त कृष्ण को तमाचे मारता था और वह उसकी गायें चराते थे। और लोग कृष्ण की रात दिन स्तुति और प्रार्थना करते रहते हैं परंतु किसी को दर्शन भी नहीं प्राप्त होता।

विष्णु शेष नाग के सेज पर लेटते हैं। शिव अपने अङ्ग-अङ्ग में विषधर साँप लपेटे रहते हैं। यह क्यों उनको नहीं काटते? इनका विष क्यों इनमें असर नहीं करता? केवल प्रेम के कारण

बच्चे सांप के मुँह में उँगलियां देते देखे गये हैं। हाथी के सूँड़ को पकड़ते हुये सुने गये हैं। भेड़ियों और शेरनियों ने आदमी के बच्चों को अपना दूध पिला कर पाला है। यह तुमने सुना होगा। यह सब प्रेम ही की लीला है।

लड़का बड़ा, अधेड़, और बूढ़ा हो जाये परन्तु माता की दृष्टि में वह बच्चा ही बना रहता है। क्या प्रेम अँधा है? हां जी, प्रेम अँधा है और प्रेम बड़ा सुझाका है। प्रेम ही सनक और पागलपन है और प्रेम ही बुद्धि विवेक और समझ बूझ है।

मेरे हो जाओ और मैं तुम्हारा होकर रहूँगा। मेरे नहीं हो तो मैं तुम्हारा भी नहीं हूँ। यह बनी बनाई बात है।

जब गुरु हैं तब मैं नहीं, जब मैं हूँ गुरु नांहि।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समांहि।

नाम देव जी के नाना कृष्ण की मूर्ति को भोग लगाया

करते थे परन्तु मूर्ति प्रगट नहीं हुई। नाम देव ने दूध का भोग लगाया और मूर्ति गट पट दूध पीने लगी। इन्होंने एक घूसा तान कर मारा "बेदर्द! सब पी जायेगा! मेरे लिये प्रसाद भी न छोड़ेगा!" मूर्ति खिलखिला कर हँस पड़ी। यह क्या है? प्रेम का तमाशा है।

राजा अपना राजपाट ले। ध्यानी ध्यान और ज्ञानी ज्ञान लेजाये। पंडित पोथी की सियाही चाटा करें। योगी योग की सिद्धी पर मरा करें, हम तो प्रेम के भूखे हैं। प्रेम दो और हम जान माल सब तुम पर न्यौछावर कर देंगे।

काबा में एक गड़रिया आया। प्रार्थना करने लगा "ऐ मेरे प्यारे मालिक! ऐ मेरे ईश्वर! तू आजा मैं तेरा पाँव दबाऊँ, सर में तेल लगाऊँ, बीमारी में दवा पिलाऊँ और सर्दी में कम्बल ओढ़ाऊँ।" मुजावर (चढ़ावा लेने वाले मुसलमान) बिगड़े। "दुष्ट! ईश्वर के हाथ पाँव कहाँ हैं?" और वह मारने दौड़े। हज़रत मुहम्मद साहिब ने सुना, बीच बचाव कराया और बोले "यह सच्चा धार्मिक और मालिक का प्रेमी है, यह ईश्वर भक्त है।" प्रेम, धर्म और पन्थ के बन्धन से परे की वस्तु है।

जहाँ प्रेम तहाँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि व्यवहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिनै तिथि बार॥

जो काम तलवार से भी नहीं हो सकता प्रेम उसको चुटकी बजाते हुये कर लेता है। थोड़ा सा मुसकरा दो और लोगों के दिलों को मुट्ठी में कर लो।

हम तुमसे अपना अनुभव कहते हैं। ताँगे पर बैठे हुये शालामार बाग से आरहे थे। घोड़ा अड़ने वाला था। कोचवान ने कोड़े फटकारे। उसने टस से मस नहीं की। हमने उसकी पीठ थपथपाई "चल बेटे! अड़ना ठीक नहीं है।"

और वह हवा से बातें करने लगा। क्या घोड़े ने हमारी बात समझ ली ? क्यों नहीं। यहाँ प्रेम ने दुभाषिये का काम किया।

"आप प्रेम करना और दूसरों के प्रेम का भूखा रहना—" पृथ्वी, आकाश, सूर्य्य और चन्द्रमा केवल इन्हीं इने गिने शब्दों के अन्दर बसते हैं। क्या प्रेम ईश्वर है ? हम आप कुछ न कहेंगे।

प्रेम की मार भी मीठी होती है। बिना प्रेम का दुलार भी बहुत ही कड़ुआ होता है।

प्रेम की मौत भी अमर पद है। बिना प्रेम का जीवन मौत से कहीं बुरा है।

प्रेमी मनुष्य अकेला रहता हुआ भी अकेला नहीं है और जिस में प्रेम नहीं है वह हज़ारों और लाखों के साथ रहता हुआ भी अकेला ही है।

प्रेम देता है लेता नहीं। निष्काम सेवा करता है। इस गुप्त रहस्य का पता सूर्य्य के प्रकाश और चन्द्रमा की शीतलता से मिलता है।

"ईश्वर हम तेरी भक्ति करते हैं तू हमको स्वर्गधाम दे।" ईश्वर क्या ठहरा बनिया हुआ। दो पैसे दिया और सौदा मोल लिया। प्रेम में इस तरह लेने देने का व्यवहार नहीं होता। यह दुकानदारी नहीं है। ऐसे धार्मिक लोगों को हम क्या कहें ? ज़ुबान नहीं खुलती क्योंकि हम इन को भी प्यार करते हैं।

बोलो-परन्तु प्रेम से बोलो। उचित अनुचित सब कुछ कह डालो, उसका प्रभाव बुरा न हो होगा परन्तु यदि रसना (ज़ुबान) में प्रेम का रस नहीं है तो फिर वह रसना 'रस'—'ना' ही है।

हमारे घर में एक बुढ़िया मजदूरिन थी। हम और हमारे भाई सब उस के सामने पैदा हुये। सब को उस ने गोद

खिलाया। हमारे बाल बच्चे पैदा हुये। यह भी सब उसी की गोद में पले। यह जुबान की तेज थी। जहाँ कोई अनुचित बात हुई बुरा भला सब कुछ कह डाला करती और गालियों की बौछाड़ लगा देती थी। हम और हमारी स्त्री दोनों हँसकर टाल देते थे। उसे कुछ नहीं कहते थे। थोड़ी देर पीछे वह आप ही पश्चाताप करती और अपने अपराधों के क्षमा करने के लिये प्रार्थना करती थी। बड़े शोक की बात है यह गाली देने वाली मजदूरिन अब मर गई और हमारे कान उसकी गालियाँ सुनने को तरसते हैं। इस बात को लिखते समय भी हम अपने आँसुओं को नहीं रोक सकते।

शादी ब्याह में गालियाँ कैसी मीठी लगती हैं। और समय तो कोई गाली दे फिर देखो क्या नतीजा होता है। यह प्रेम का जादू है जो विष को भी अमृत कर देता है।

ईश्वर क्या है? प्रेम ही का नाम ईश्वर है। ईश्वर प्रेम मूर्ति है। ईश्वर प्रेम है और प्रेम ईश्वर है, यह तो हम जानते हैं। जिस ईश्वर की खोज धर्म ग्रन्थों में की जाती है उसको हम अब तक नहीं जानते हैं और न हमने अब तक उसका ज्ञान प्राप्त किया है और न कभी इस पुस्तकीय या काग़जी ईश्वर के मिलाप की हमें इच्छा होगी।

बाँके सजीले जवान को एक कुरूपा स्त्री पर और रूपवती युवती को एक काले कलूटे पुरुष पर मोहित होते हुये देखकर तुमको आश्चर्य्य क्यों होता है। यह प्रेम ही के खेल और तमाशे हैं। प्रेम जो चाहे वह कर दिखाये। इसके यहाँ असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

लैला अँधेरी रात की तरह काली कलूटी थी। मजनूँ गोरा चिट्टा और सजीला जवान था। वह उसका प्रेमी हो गया। क्यों ऐसा हुआ? मजनूँ के हृदय के सौन्दर्य्य ने लैला

की परियों और अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर बना दिया।

नयनों में मेरे कान्हा बिराजा, कान्हा की छवि पर मोही राम!
रूप अरूप बसा मेरे उर में, रूप निरख अति मोही राम!
तिरछी चितवन नयना रसीले, तक तक मारे नजरिया राम!
छेद करेजे करती नजरिया, सही न जाय कटरिया राम!
गोपी गोप कृष्ण रस माते, सुध बुध तन की भूले राम!
मारैं पेंग प्रेम के पल पल, प्रेम हिंडोले में झूलें राम!

कहाँ का वैराग! कैसे जप तप! और कैसा योग युक्ति! प्रेम! प्रेम!! प्रेम!!! प्रेम ही सब कुछ है। न 'ब्रह्मास्मि' कहते हुये ब्रह्म बनो और न ज्ञान के उलझन में फँसकर सर खपी करो। केवल प्रेम को दिल दो। जो होने को होगा आप समय पर हो रहेगा। यदि द्वैत और अद्वैत के झगड़े में पड़ते हो तो तुम जानो और तुम्हारा काम जाने!

छठवीं तरङ्ग

जीवन

जीवन क्या है? जीवपने का नाम जीवन है। सुख, दुख, प्रयत्न, राग, द्वेष, और ज्ञान यह जीव के लक्षण हैं। जिसमें यह सब गुण देखो उसको जीव समझो।

जहाँ और जिसमें सुख है वहाँ उसी ही में दुख है। जहाँ और जिसमें राग है वहां और उस ही में द्वेष है। इन द्वन्दों की समझ का होना ज्ञान और इनसे बचने के लिये परिश्रम करना प्रयत्न है।

प्रयत्न कर्म है। जिसमें प्रयत्न नहीं है उसमें जीवपना कैसा? जीवन कर्म और परिश्रम के लिये है। सुस्त, अपाहिज

और आलसी मनुष्य को जीवन का क्या अधिकार है ? जीवन का अधिकार तो केवल उसका है जो कर्म करता है और प्रयत्न में लगा रहता है।

'प्रयत्न' का शब्दार्थ सुनो। 'प्र' (बहुत) और 'यत्न' (उद्योग) से यह शब्द मिलकर बना है। बहुत उद्योग करना ही प्रयत्न है और यही प्रयत्न पुरुषार्थ है।

'पुरुषार्थ' क्या है ? पुरुष के अर्थ और आदर्श का नाम पुरुषार्थ है।

मनुष्य का परम पुरुषार्थ यह है कि वह दुख से बचने और सुख के प्राप्त करने का साहस करता रहे। दुख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति ही को परम पुरुषार्थ और परम प्रयत्न करते हैं।

इस परम पुरुषार्थ आदर्श का दूसरा नाम ज्ञान है। जीव को सुख की और राग द्वेष की समझ है और यही ज्ञान है जो दबा हुआ पड़ा है। इसको उभरने का अवसर दिया जाये। ज्ञान के होते ही वह दुख से बचकर पहिले सुख प्राप्त कर लेगा फिर सुख और दुख दोनों मेट कर परम पद को प्राप्त करेगा। उस समय फिर वह कुछ और हो जायेगा, जीव न कहलायेगा। इसी तरह वह द्वेष पर काबू पाकर राग से सम्बन्ध पैदा कर लेगा। फिर राग और द्वेष दोनों को छोड़ कर ऐसी अवस्था में चला जायेगा जो जीवपने से बहुत ऊँची है।

प्रयत्न इसलिये जीवन का स्वभाव है। प्रयत्न के योग वह पुरुष होता है जो अपने मन पर काबू रखता है और यह बात मन की गढ़त करते रहने से आती है। इसलिये यह बहुत ही आवश्यक है।

मन की गढ़त और सुधार के लिये यह अत्यन्त आवश्यक

है कि खाने पीने की ओर से संतुष्टि रहे। भूखे आदमी से न लोक का काम होता है न परलोक का।

किसी की बुराई न देखो। यदि बुराई ही देखना है तो अपनी बुराई देखो और अपने सुधार में लगो।

हर आदमी में मालिक की निराली शान है। यही शान वास्तव में उसके जीवन का स्वभाव है। यदि यह न हो तो फिर वह जीवन ही कैसा! यह जीवन मालिक का दिया हुआ है। वह ईश्वर की ओर से है इसलिये वह कभी उसकी शान से खाली नहीं रह सकता।

किसी मनुष्य के चंचल स्वभाव को देखकर क्रोध क्यों करते हो? प्रकृति एक दशा में कब रहती है? फिर जो उस में है वही संसार के जीवों में भी तो होगा। प्रकृति बदलती रहती है। इसीलिए आदमी का स्वभाव भी बदलता रहता है। हाँ एक बात तुम कर सकते हो। वह बुराइयों को जल्द भूल जाया करती है। तुम भी अपने सम्बन्धियों की भूल चूक की ओर से आँख बचाते रहो।

काम करो और ऐसा काम करो जिस से औरों की भलाई हो। पानी की तरह मन के मैल को धो दिया करो। हवा की तरह प्रेम के साथ औरों को गले लगाना सीखो। आकाश की तरह विशाल चित्त होकर सब को अपने हृदय के अन्दर जगह दो। पृथ्वी की तरह बुरी से बुरी वस्तु को भी अच्छे से अच्छा रूप देना सीखो। आग की तरह गन्दगी को जलाकर सब को पवित्र कर दिया करो। यदि तुम में इस तरह के प्रयत्न या पुरुषार्थ की आदत है तो तुम अपने जीवन के आदर्श से दूर नहीं हो।

दिन के कामों पर सन्ध्या समय विचार कर लिया करो। यदि वह अच्छे हों तो मालिक को सच्चे हृदय से धन्यवाद दो

और तब सोने जाओ और यदि बुरे हों तो पश्चात्ताप करो और दूसरे दिन प्रातःकाल मालिक से प्रार्थना करो कि आज तुम्हारे हाथों से भले काम हो।

सुख और दुख से परे भले कामों के नतीजे हैं। अच्छे काम का नतीजा सुख और बुरे काम का नतीजा दुख है। तुम केवल अच्छे कर्मों में प्रयत्न करो।

जो समय चला जाता है वह फिर हाथ नहीं आता। इसलिये ध्यान रक्खो कि समय नष्ट न होने पाये। गये हुये समय को वापस लाने की शक्ति ब्रह्मा में भी नहीं है। जो समय गया वह गया। जवान फिर न लड़के होंगे न बूढ़े जवान होंगे। जो समय मिला है इसे काम में लाओ और जो कुछ करना धरना है अभी कर लो।

आने वाले दिनों की आशा में आदमी बुरी तरह मारे गये और मारे जा रहे हैं। आशा उत्तम वस्तु है परन्तु यही आशा धोखे में डाल देती है। इसलिये काम के सिलसिले में आशा रखना सीखो। किसान खेत में बीज बोकर तब फ़सल और फल की आशा रखते हैं।

कुछ तो हम कर्म और कर्म के प्रयत्न से बनते हैं और कुछ प्रेम भी हम को बनाया करता है। प्रेम बीज है जो मनुष्य के विचार में रहता है।

कल एक ग़रीब स्त्री का लड़का दरवाज़ा खटखटाने लगा। हम काम में थे। आदमी से कहा उसको जाकर डाँट दो। लड़का अपनी मां के साथ चला गया। मालूम हुआ कि उसका पति बीमार है। वह भिक्षा माँगने आई थी। जी दुखी हुआ। निर्धनता बुरी होती है। आदमी को दौड़ाया कि वह कुछ उसको दे आये और अपनी डाँट डपट के लिये क्षमा माँगी।

दुखियों के दुख पर आँसू बहाना सीखो। सब के साथ प्रेम भाव रक्खो।

घर बार को छोड़ कर जंगल में रहने से मन की निरख परख का अवसर नहीं मिलता। इसका अवसर जब मिलेगा संसार के बन्धन में रहने ही से मिलेगा।

रात के सितारों को देखो। चाँद की ओर दृष्टि करो। सब अपना स्थान छोड़ते हुये चले जा रहे हैं। हम तुम भी पल पल में इसी तरह अपना अपना स्थान छोड़ रहे हैं। हाँ, हमको ज्ञान नहीं है परन्तु आयु व्यतीत होती चली जा रही है और हम में से किसको अपने सुधार का ध्यान है?

सुनसान रात है। रात ने सब पर अन्धकार का परदा डाल रक्खा है। यही कारण है कि किसी को कुछ सूझता नहीं और न किसी को अपने पराये का ज्ञान है। क्या ही अच्छा होता यदि हम भी इसी तरह अज्ञान और बदी पर परदा डाल कर उनकी ओर से आँख हटा लेते और ऐसी दशा को प्राप्त कर लेते कि अपने पराये का ज्ञान न रहता।

बुढ़ापा आ गया। सर के बाल उजले देखकर और लोग तो बाबा कहते हैं परन्तु बाबा जी का दिल वैसा ही काला है। यह अपने आपको बूढ़ा नहीं मानते और न जवानी की तरंगों को दिल से दूर होने देते हैं। यदि यह आश्चर्य की बात नहीं तो क्या है!

पानी की बाढ़ आई। दिलों को हिला गई। ठंडी हवा चली और सब कांप उठे। क्या इसी तरह तुम अपनी सच्ची सहानुभूति और सच्चे प्रेम से संसार को नहीं हिला सकते? इसी का नाम तो जीवन है। संसार पर अपना प्रभाव डालने ही को जीवन कहते हैं। सोचो तुम्हारे अपने जीवन का औरों पर कुछ असर भी है या नहीं।

बाहरी दिखावे और सामाजिक सभ्यता थोड़ी देर की धूप छांह हैं। इनको लोग जल्द भूल जाया करते हैं परन्तु प्रेम के व्यवहार का प्रभाव बहुत दिनों तक याद किया जाता है।

अँधेरी रात है कुछ दिखाई नहीं देता। लैम्प जलाया। अब सब कुछ दिखलाई देने लगा। इसी तरह संसार में अब भी चारों ओर अँधेरा छाया हुआ है परन्तु जब प्रेम का चिराग जले और सब पर उसकी रोशनी पड़े तो वह चमकती और झलकती हुई दिखलाई देने लगे।

यदि तुम में सूरज चांद और सितारों जैसी चमक दमक नहीं है न सही। जुगनूँ की तरह तुम में कुछ तो रोशनी है! प्रेम की चमक से कुछ तो चमको जिसमें अधिक नहीं तो कुछ तो चमक लोगों को दिखलाई दे। तुम्हारे जुगनूँ होने में तो सन्देह ही नहीं है। मालिक का प्रकाश उसके सारे बाल बच्चों में कमी बेशी के साथ है।

आशा प्रकृति की जान है। अच्छी अवस्था के प्राप्त करने की आशा रक्खो परन्तु यह याद रक्खो कि सबकी भलाई में तुम्हारी अपनी भलाई है। शरीर को उस समय सुख मिलता है जब उसके अंग अंग ठीक रह कर अपना अपना काम करते रहते हैं। तुम सब भी इस संसार में ऐसी ही हैसियत रखते हो। एक दूसरे से कभी किसी हालत में अलग नहीं हो! हाँ भेद केवल इतना है कि तुम अपने आपको अंश मान रहे हो। फिर भी कोई चिन्ता नहीं। सारे अंश मिलकर कुल (पूर्ण) होते हैं।

यदि किसी को कुछ दे नहीं सकते तो कम से कम उस पर तरस खाओ और दया करो। यह भी कम नहीं है।

यदि मनुष्य अपनी संसारी भलाई का प्रयत्न करे तो वह

पुरुषार्थी बन जायेगा। बौद्धों का धार्मिक सिद्धान्त यही है और इसी एक बात को वह मुख्य समझकर अपने जीवन का अङ्ग संग बना लेते थे।

सातवीं तरंग

शब्द विचार

दोहा

शब्दहिं मारे मर गये, शब्द हि तजिया राज।
जो यह शब्द विबेकिया, ताका सरिया काज ॥ कबीर।

'शब्द अभ्यास', 'शब्द विद्या', 'शब्द योग', 'शब्द ब्रह्म', इत्यादि शब्द सैकड़ों वर्षों से लोगों की जुबान पर रहते हैं परन्तु शब्द क्या है इस पर बहुत कम आदमी विचार करते हैं। बहुत ही थोड़े लोग हैं जो शब्द की असलियत को समझते हैं।

शब्द आवाज़ को कहते हैं। आवाज़ दुनियाँ में सब से बलवान शक्ति है। यह प्राणों का प्राण और जीवों का जीव भी है। चिउँटी से लेकर ब्रह्मा तक और पाताल से सत्य लोक तक यदि कोई वस्तु सर्व व्यापक है तो वह शब्द ही है। दर्शन शास्त्रज्ञ फ़िलास्फ़रों ने आकाश का तत्त्व शब्द ही को कहा है परन्तु वह यहीं तक नहीं है। यदि वह एक ओर प्रकृति की जान है तो दूसरी ओर पुरुष की रूह भी है।

'प्रकृति' संस्कृत शब्द 'प्र' (बड़ी) और 'कृ' (कर्म) से बनी है। बड़ाई और कर्म की जान सिवाय शब्द के और क्या हो सकती है? जहाँ कर्म है वहाँ क्रिया है। जहाँ क्रिया है वहाँ कोई वस्तु भी है जिस से वह क्रिया होती है। इस लिये यह प्रकृति भी क्या हुई? शब्द ही तो हुई। इसी तरह पुरुष,

जो शरीर में रहता है वही पुरुष है। शरीर में क्या रहता है? विचारने से पता लगता है कि वह शब्द ही तो है। शब्द के सिवा कोई दूसरी वस्तु नहीं। 'बोलता' निकल गया ठठरी पड़ी हुई है। 'बोलता' 'पुरुष' ही का नाम है। प्राण बोलता है। यह किसके आधार पर बोलता है? शब्द के आधार पर, इस लिये मन, प्राण, बाणी, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, परब्रह्म, ओंकार पुरुष, सोहं पुरुष और सत् पुरुष यह सब के सब शब्द ही कहे जा सकते हैं। वह असल और नक़ल की दृष्टि से शब्द के सिवा और कुछ भी नहीं हैं।

धार्मिक पुस्तकों पर विचार करो। हर जगह शब्द ही शब्द है। वेद कहते हैं "पुरुष ने कहा 'मैं हूं' और वह मैं हो गया। पुरुष ने सोचा 'मैं एक से अनेक हो जाऊँ' और वह एक से अनेक बन गया।" इसमें कहना सोचना और होना सिवाय शब्द के तमाशों के और क्या कहा जा सकता है। यूहिन की इन्जील कहती है "पहिले शब्द था। शब्द ईश्वर था। शब्द ही ने सब कुछ पैदा किया।" हज़रत मूसा की तौरेत भी यही कहती है "ईश्वर ने कहा प्रकाश होजाये और प्रकाश होगया।" क्या इससे सिद्ध नहीं है कि शब्द ही पैदा करने वाला है। मुसलमान क्या बोलते हैं "खुदा (ईश्वर) ने कहा 'कुन' (हो जा) और दुनियाँ बन गई।" सोचो और तुम समझ जाओगे कि जिसको ईश्वर कहा जाता है वह वास्तव में शब्द मात्र है। शब्द के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। शब्द को साधारण वस्तु न समझो। उसके परदों के अन्दर घुसो तब पता लगेगा। पन्थ के आत्म ज्ञानी आचार्यों ने तो परदा देकर शब्द ही को सार तत्त्व बतलाया है परन्तु सत् पुरुष राधास्वामी दयाल ने प्रगट होकर स्पष्ट शब्दों में उसकी व्याख्या करदी है। आप का बचन है:—

'शब्द गुप्त तब रहा अनाम।
शब्द प्रगट तब धरिया नाम ॥"

अर्थात् जब तक यह शब्द प्रगट नहीं हुआ था तब तक वह अनाम और बेनाम वाला था और जब शब्द प्रगट हुआ तो वही नाम वाला हो गया। इससे उत्तम आज तक किसी ने भी शब्द की व्याख्या नहीं की।

संत जगजीवन साहिब के शिष्य दूलम दास जी की बाणी है:—

शब्द

देख आयो मैं तो साईं की डगरिया,
साईं की डगरिया, सत् गुरु की सेजरिया, देख आयो मैं···(टेक)
शब्द हि ताला शब्द हि कुन्जी, शब्द की लगी जँजिरिया ॥
शब्द ओढ़ना शब्द बिछौना, शब्द की चटक चुनरिया ॥
शब्द रूप स्वामी आप बिराजे, सीस चरन पर धरिया ॥
दूलम दास के साईं जगजीवन, अग्नि से अधिक उजरिया ॥

यह शब्द ही सृष्टि, स्थिति और प्रलय का आधार है। यह उच्च लोकों में 'हिरण्य गर्भ', 'अव्याकृत' और 'विराट' है। यही मध्य लोक का 'ब्रह्मा', 'विष्णु' और 'महेश' है। यही शब्द इस निचले मण्डल में जीव रूप में 'विश्व', 'तेजस्' और 'पराग्य' है। यदि शब्द 'ब्रह्म' है तो ब्रह्म का प्रगट होना भी शब्द ही है। यदि 'ब्रह्मा' शब्द है तो 'ब्रह्मानी', 'गायत्री', और 'सावित्री' भी शब्द ही हैं। शब्द के सिवा और हो क्या सकता है ? सोचो और विचारो तो अभी असलियत का परदा उठ जावे और उसका दर्शन प्राप्त हो। विना बिचारे हुये कोई कैसे उसकी असलियत का पता पाये !

यह शब्द ही 'ब्रह्माण्ड', 'पिण्ड' और 'वसुदेव' है और

इसी के पेट में 'ॐ' का शब्द, 'जीव' का शब्द और 'कृष्ण भगवान' की बाँसुरी बजती रहती है। गोपी और गोप कहते हैं "बाँसुरी बाजी मधुबन में।"

बहती हुई हवा उसी का गाना सुना रही है। चलता हुआ पानी सचाई का राग गा रहा है। जलती हुई आग हज़ारों लपलपाती हुई जुबानों से असलियत का अलाप अलाप रही है। वृक्षों के पत्ते एक दूसरे के साथ टक्कर खाकर झाँझ की तरह बज रहे हैं।

पशु पक्षी सब अपनी अपनी बोली में उसी की स्तुति गा रहे हैं। इसी शब्द या आवाज़ में जीवन है। इसी में मौत का भी तमाशा है। बच्चा पैदा होते ही आवाज़ करता है। यदि उसके मुँह से शब्द नहीं निकलता तो वह मृतक समझा जाता है। शरीर की फुर्ती, इन्द्रियों के कर्म और ज्ञान शब्द ही के आधार पर हैं। कर्म के सिलसिले में हर जगह शब्द गूँज रहा है। तुम सुनो या न सुनो परन्तु इससे खाली कोई भी वस्तु या स्थान नहीं है। जलते हुये चिराग और पड़े हुये लकड़ी पत्थर के अणु अणु से शब्द हो रहा है। मेज़ और कुरसी को एक जगह कुछ दिनों के लिये रख दो। उनका रंग रूप बदल जायेगा क्योंकि शब्द का नियम उनके परमाणुओं को चलाता हुआ तबदीली के लिये मजबूर करता रहता है और वह बन कर बिगड़ते और बिगड़ कर विशेष रूप से बनते रहते हैं। यदि तुम इनकी ओर से अपनी आँख न मीचो तो इनके अन्दर भी आवाज़ को गूँजती हुई सुन सकते हो।

शब्द प्रकृति का गुप्त रहस्य है जिसका कार बार पल पल होता रहता है। कवि ने करुणा रस की कविता सुनाई। सुनने वालों का कलेजा दहल गया, सर में चक्कर आ गया और

आँखों से आँसू बहने लगे। उसने लहजा बदल दिया। उसी शब्द को वीर रस में दुहराया। रोंगटे खड़े होगये। आँखें अंगारों की तरह लाल हो गईं। दिल बल्लियों उछलने लगा। अब उसने मस्ती का राग छेड़ा। सब मस्त होकर झूम रहे हैं। जब आँखें हमदर्दी की नजर से पपोटों के अन्दर हरकत करती हैं टूटे हुये दिल जुड़ जाते हैं। उसकी हरकत में जादू की आवाज़ है जिसको केवल विवेकी पुरुष सुनते हैं। हाथों के इशारों में जादू का असर है क्योंकि इनमें वही आवाज़ छुपी हुई काम करती है।

जुबान बोले या न बोले वही काम आँखें करती हैं। आँखें देखें या न देखें दिल वही काम करता रहता है। दिल सोचे या न सोचे अन्तरी शब्द काम किये हुये बिना कब रहेगा! यह बहुत ही गूढ़ विषय है जिसकी समझ किसी संत महात्मा ही को होगी। यही शब्द हाथ पाँव वाला है और इसके हाथ पाँव नहीं भी हैं। यही सगुण और निर्गुण ब्रह्म है। यह प्रगट होकर कहीं दवा और इलाज करता है और कहीं शरीर को घायल और दिल को चूर चूर भी कर देता है। फ़क़ीर की आवाज़ दुनिया की ओर से बेपरवाह बना देती है और संसारी मनुष्यों की बात संसार के झमेले में फँसा देती है।

दोहा

एक शब्द सुखरास है, एक शब्द दुख रास।
एक शब्द बन्ध कटै, एक गले की फाँस ॥ १ ॥
शब्द शब्द सब कोइ कहै, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द औषध करै, एक शब्द करै घाव ॥ २ ॥

एक शब्द के रंग रूप और हिसाब होते हैं और यही शब्द रंग रूप और हिसाब से खाली है। यह न समझो कि शब्द

का रंग रूप नहीं है और वह गिनती में नहीं आता। उसमें सब कुछ है और कुछ भी नहीं। क्रोध के शब्द का रंग अंगारे की तरह लाल है। प्रेम के शब्द का रंग नीला है। ज्ञान के शब्द का रंग उजाला है। क्रोध के शब्द का रूप डरावना है। प्रेम के शब्द का रूप मनोहर है। ज्ञान के शब्द का रूप सूक्ष्म और पवित्र है। एक एक शब्द के हजारों प्रभाव हैं। वह एक होता हुआ अनेक भी है। तुम किस झगड़े में फँसे हो! इसी शब्द की ओर ध्यान दो और सब कुछ तुम्हरी समझ में आ जायेगा। यही आत्मा और परमात्मा है। तुम किस आत्मा और परमात्मा के झमेले में जाकर अटके! यही शरीर है। यही रूह (सुरत) है। यही दिल है। यही दिमाग़ है। यही बीमारी है। यही दवा है। कहाँ तक हम खोल कर कहें! यदि आदमी चाहे तो केवल गाना सुना कर बड़े से बड़े रोग को दूर कर सकता है। यदि किसी को इसकी असलियत का पता लग जाये तो वह बुझे हुये चिरागों को दम के दम में जला दे। इसमें शक्ति है कि पानी को पत्थर बना दे और पत्थर को पानी करके बहा दे। यह साइन्स की जान, विज्ञान की रूह और फिलोस्फी का इत्र है। आज सम्भव है तुम हमारी बातों पर हँसी उड़ाओ परन्तु समय आयेगा जब शब्द की महिमा समझ में आयेगी। उस समय तुम हाथ मलोगे कि हाय! हम ने सचाई की ओर से आंखें मीच रक्खी थीं। अवसर था कि तुम हम से या किसी और से परमार्थ की कुंजी प्राप्त कर लेते और अपना काम बनाते परन्तु पक्षपात और हठधर्मी कर रहे हो और सचाई के ग्रहण करने से भागते हो।

दोहा

शब्द हमारा हम शब्द के, शब्दहि लेय परख।

जो तू चाहे मुक्ति को, अब मत जाय सरक ॥१॥
शब्द हमारा आदि का, पल पल करिये याद।
अन्त फलेगी माँह[1] की, बाहिर के बरबाद ॥२॥ (१) अन्दर
शब्द हमारा हम शब्द के, शब्द ब्रह्म का कूप।
जो चाहे दीदार को, परख शब्द का रूप ॥३॥

दिल के ऊँचे बनो। किसी पन्थ या धर्म को बुरा भला क्यों कहते हो? हम को देखो। हम न किसी धर्म की निन्दा करते हैं न बुराई। सब का इत्र निकाल कर तुमको सुँघाते रहते हैं। बुराई से बुराई और भलाई से भलाई पैदा होती है। हम ने गुरू की अपार दया से शब्द का कुछ भेद प्राप्त किया। अब हम को संसार के सारे धर्मों में सचाई ही सचाई दिखलाई देती है। तुम भी ऐसा ही कर सकते हो।

शब्द बिना सुरत आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै शब्द का, फिर फिर भटका खाय ॥

शब्द का ज्ञान प्राप्त करके आवाज दो। फिर किस की मजाल है कि तुम्हारी आवाज को न सुने! बिना शब्द के ज्ञान के क्या हो सकता है!

तुम्हारे दिमाग के आसमान में आवाजें गूंज रही हैं, परन्तु तुम नहीं सुनते और सुनो भी कैसे! पक्षपाती और कट्टर बन रहे हो। क्यों दिल से इन बुराइयों को दूर करके पवित्र हृदय होकर अन्तरी शब्द और गाने को नहीं सुनते! अभी सारी बुराइयों से छूट जाओ और हठ धर्मी और तंग दिली जाती रहे। यही शब्द वास्तव में आकाश बाणी हैं। यही ईश्वरीय वाक्य हैं।

मुसलमानों में मौलाना रूम एक प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं उनकी कविता फ़ारसी में हैं। एक जगह वह लिखते हैं—"१. पैग़म्बर ने कहा—खुदा (ईश्वर) की आवाज मेरे कानों में

ज़ोरों से आती रहती है। (२) सूरमा बनकर आसमान को पाँव के तले लाओ और आसमान पर चढ़ कर राग सुनो। (३) जो आवाज़ तुमको ऊपर की ओर खींचती है समझ लो कि वह ऊपर से आ रही है। (४) जिस आवाज़ से लोभ उत्पन्न हो, जान लो कि वह भेड़िये की आवाज़ है जो दुनिया को फाड़ डालेगी। (५) कानों को पास लाओ। वह दूर नहीं है परन्तु तुमसे स्पष्ट कहने का हमारा दस्तूर नहीं है। (६) यदि थोड़ा सा भी हाल इन शब्द का सुनायें तो अभी क़ब्रों के मुर्दे जी उठें। (७) इस राह में जीते जी आकर अपना काम बना लो और अन्त समय तक बेसुध और अचेत मत रहो।"

सम्भव है तुम कहो कि हम अपनी ओर से नई शिक्षा तुम्हें दे रहे हैं। तुम्हारा यह विचार असत्य है। नई और पुरानी कहने सुनने के लिये हैं। न कोई वस्तु पुरानी है न नई है। तुम नहीं देखते कि हम वेदों का इत्र, मसीही धर्म का तत्व और मुसलमान संतों का असली मतलब तुमको बता रहे हैं। हाँ, इनमें बारीकियाँ हैं। स्पष्ट व्याख्या नहीं है। वह काम हम कर देते हैं। पूर्ण धनी हुज़ूर महाराज ने जो शिक्षा दी है वह हम सुनने वालों को निर्पक्ष होकर अनेक रूप से सुनाते और समझाते रहते हैं। हिन्दू, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान और यूनानी फ़िलोसफी का यही इत्र है। हम गुरू बनने की इच्छा से यह तुमको नहीं सुनाते। तुम इसको समझ लो और जहाँ से तुम्हारा जी भरे उपदेश लेकर काम में लग जाओ। यदि इतना कहने पर भी नहीं समझते तो तुम जानो और तुम्हारा काम जाने।

हर आवाज़ की तुम्हारे अन्दर हद है। उस हद में आवाज़ सुनते हुये बेहदी की ओर चलने लगोगे और एक ऐसी जगह में पहुँचोगे जहाँ रंग रूप और रेखा कुछ भी नहीं है।

न एक अनेक का झगड़ा है। सच्ची शान्ति, असली सच्चाई और अमर पद प्राप्त कर लोगे। तुम संसारी झमेलों और बुराइयों से शुद्ध और पवित्र होकर उस स्थान के बासी हो जाओगे जिसको संत "राधास्वामी धाम" कहते हैं। यदि इस अकेली और सच्ची युक्ति से चूक गये तो यों ही औरों की तरह भटका खाते रहोगे। फिलोस्फी से यह गुत्थी कभी न सुलझेगी क्योंकि वह कबीर साहिब के बचनानुसार काल मत, झाईं मार्ग और छाया की राह है।

इससे अधिक क्या कहें? बहुत कह चुके। यदि जी में आये और मन माने तो सुरत शब्द योग के साधन में लगो।

दोहा

जैसे जल में कँवल निरालम, मुर्गाबी नशानिये।
सुरत शब्द भव सागर तरिये, नानक नाम बखानिये॥

आठवीं तरंग

समय समय की बातें

सम्भव है तुम्हारी भलाई का यही समय हो। भलाई के भी अनेकों रूप हैं—हवा का झोंका आया, बच्चे की आवाज़ कान में पड़ी, वृक्ष से पत्ता टूट कर गिरा, बिजली का कौंधा कड़क कर चमका, बुरे भले समाचार सुनने में आये। यह सब स्वर्ग के दूत हैं। यदि तुमने इनकी ओर कुछ भी ध्यान दिया तो दम के दम में जीवन सुधर जायेगा और यदि इनकी ओर से बहिरे और अन्धे बन गये तो फिर समय जाता रहा। कौन जाने वह कब फिर आवे? सम्भव है इस जन्म में न आये।

बुद्ध भगवान ने बूढ़े, रोगी और मृत्यु के दृश्य देखकर

संसार के असार होने का उपदेश ग्रहण किया और आत्म ज्ञानी होगये। दत्तात्रेय जी दुनिया की बहुत ही छोटी छोटी बातों को देख कर त्यागी और ऋषि बन गये। तुम भी यदि चाहो तो इसी तरह बुद्ध और दत्तात्रेय हो सकते हो।

किताबें पढ़ते हो। यदि उसकी कोई पंक्ति दिल में कुछ प्रभाव करती है तो उसको ध्यान दो। कौन जाने यही तुम्हारी मुक्ति का कारण हो।

तुम्हारा अपमान हुआ। नेकनामी जाती रही। बदनाम हो गये। क्या इससे भी तुम्हें कुछ उपदेश नहीं मिलता?

धन द्रव्य जाता रहा। दिवाला निकल गया। कंगाल और निर्धन बन गये। क्या अब भी आँख नहीं खुलती?

सन्तान मर गई। इष्ट मित्र जाते रहे। स्त्री चल बसी। यह सब बातें दिल के उभारने और सच्चाई की राह में लाने के लिये काफी हैं।

भूलो मत। चेत करो समय चला जा रहा है। उसके इशारों को समझो और अपना काम बनाओ। उपदेश नित्य ही नहीं किया जाता। तुम दिल को कड़ा न करो। उसे मुलायम होने दो। इसीसे उसमें पवित्रता और सूक्ष्मता आयेगी। पानी भाप बनकर ऊपर की ओर चढ़ता है। मिट्टी पाँवों से दब दब कर गर्द के रूप में आसमान से बातें करती है। लकड़ी जल-कर धुआँ होजाती है। उसे मुट्ठी से पकड़ो तो सही। संसार की विचित्र घटनायें केवल जीवन के सुधार के लिये हैं। यदि नहीं समझते तो फिर और कोई गुरू तुम को क्या उपदेश सुनायेगा और तुम क्या और किस की सुनोगे।

समय आ गया है। सोचो समझो और काम में लगो।

नवीं तरंग

मृग तृष्णा

मारवाड़ के रेतीले हिस्सों में मृगतृष्णा के दृश्य अधिकता से देखने में आते हैं किन्तु यों कहना चाहिये कि सारे राजपूताने के रेगिस्तान में अधिकतर यही हाल रहता है। यदि दिल्ली की जामा मसजिद पर जेठ बैसाख के दिनों में दोपहर के समय चढ़ो तो पूरब की ओर उस जगह से भी कभी कभी सामने की ओर नदी के लहराने का धोका हुआ करता है। दिल्ली भी राजपूताने के रेगिस्तान में है। इस रेगिस्तान का फैलाव हिन्दुस्तान से लेकर अरब और अफ़रीक़ा के जंगलों तक है। अरब की मृग तृष्णा से और भी धोका होता है। कहा जाता है कि वह देखने में बड़े ही मनोहर प्रतीत होते हैं। आदमी प्यासा है। सामने उसको न केवल नदी दिखाई देती है किन्तु उस पर ऊँचे ऊँचे पुल, खम्भे, महराब सभी दिखाई देते हैं। इतना ही नहीं किन्तु आबादी और बस्ती का धोका भी होता है। सामने ऊँचे ऊँचे मीनार खड़े हैं। पुलों की खिड़कियाँ खुली हुई जान पड़ती हैं। पुलों पर या इन मीनारों की चोटियों पर चील कौवे और बगुले भी मँडलाते रहते हैं। प्यासा पथिक कैसे समझे कि वास्तव में आंखों को धोका हो रहा है! वह खुली आंखों देख रहा है। फिर सन्देह क्यों करे। बढ़ता हुआ आगे की ओर कई कोस चला जाता है परन्तु न कभी दरिया तक पहुँचता न बस्ती में पैर रखने की नौबत आती है। यदि किसी ने उसको इस मृग तृष्णा का भेद न बताया तो वह थक थककर राह में पड़ रहता है क्योंकि एक तो कोई आदमी अकेले राह नहीं चलता, दूसरे लोग जानते रहते हैं कि यह बस्ती नहीं है,

न नदी है, न पुल है, यह केवल मृग तृष्णा है। यह अनजान आदमियों को समझा देते हैं।

जिस प्रकार इस का तमाशा हुआ करता है वैसा ही संसार में माया का खेल भी है। मृग तृष्णा का दृश्य वास्तव में है नहीं परन्तु दिखाई देता है। माया भी अनहुई परन्तु भासती रहती है। ज्ञानी और मूर्ख दोनों को उसका भ्रम होता है। मूर्ख तो इस भ्रम में पड़कर जान दे देते हैं और बुद्धिमान अनुभव प्राप्त करके कभी कभी बच जाते हैं।

सभी जानते हैं कि संसार में कोई किसी का नहीं है। लड़की लड़के, इष्ट मित्र, भाई सम्बन्धी, अपने पराये, धन द्रव्य किसी का विश्वास नहीं। सब स्वार्थी हैं और अपने मतलब के लिये घेरे रहते हैं परन्तु कौन ऐसा मनुष्य है जो उन के जाल में फँसा हुआ नहीं है? समय पर और काम पड़ने पर सब आँखें फेर लेते हैं परन्तु मनुष्य को देखो! उसे कितना ही अनुभव हो फिर भी सम्भव नहीं कि वह इन की ओर न जाये और इन के हाथों दुख कष्ट न उठाये। दो चार दस बीस बार का सताया हुआ आदमी भी इस जाल से नहीं निकलता और न निकलने का उपाय सोचता है। वह रोता है चिल्लाता है। रात दिन दुखी रहता है और साथ ही जानता भी है कि संसार ने आज तक किसी का साथ नहीं दिया। यह बालू की भीत है। जो यहां आया सब कुछ छोड़ कर चला गया। न कुछ अपने साथ ले गया न कोई उसके साथ गया। परन्तु क्या वह कभी विचार करके उससे बचने और सँभलने का यत्न भी करता है? हम को ऐसा एक आदमी भी दिखलाई नहीं देता। औरों को क्यों कहें हम स्वयं अपने जीवन के कामों पर विचार करते हैं। परन्तु यह विचार क्या काम करता है। आज अभी विचार किया और आज ही उस

के प्रतिकूल काम करने लगे। विचार और बेविचार सब बराबर हो जाता है। कभी कभी हमने घरों की स्त्रियों को आपस में लड़ते हुये देखा। बुरा भला सब कुछ मुँह से निकल गया। थोड़ी देर पीछे वह फिर वैसे ही बात चीत करने लगीं जैसे कुछ हुआ ही न था और फिर बात बात में लड़ बैठीं। यह खेल नित्य ही देखने में आता है। लाहौर शहर की साधू स्ट्रीट में मेरे दफ्तर के सामने कई पंजाबी रहते थे। दो घरों में मौतें हो गईं। बिरादरी की स्त्रियां सियापा (मातम) करने के लिये आईं, रोईं पीटीं और चिल्लाईं। थोड़ी देर पीछे एक दूसरे से कहने लगीं "तू मेरे बहू के सियापे में नहीं आई थी मैं भी तेरे घर न आऊँगी।" इसी बात पर झगड़ा मच गया। दूसरी स्त्रियों ने समझा बुझा कर बीच बचाव किया। फिर इनमें हँसी दिल्लगी होने लगी। कहां लड़ाई झगड़ा! कहाँ हँसी ठठोल!

यह क्या है? इसी का नाम माया है। माया शब्द संस्कृत धातु 'मा' (माप या पैमाना) और 'या' (जिस के द्वारा, जिस में से और जिस के आसरे कोई वस्तु देखी जाय) से बना है। यह माया झूठी और असत्य है। हजारों बार इसे देखा और झूठा पाया परन्तु फिर भी उसका साथ नहीं छोड़ा। यदि यह आश्चर्य्य का विषय नहीं तो क्या है! यक्ष ये युधिष्ठिर से पूछा "सब से विचित्र बात क्या है?" युद्धिष्ठिर ने उत्तर दिया "हम सब को मरते देखते हैं और फिर भी अपने मरने का विश्वास नहीं करते। संसार में सब से विचित्र बात यही है।" और यह क्या है? इसी का नाम माया बताया गया है।

माया जीव की दृष्टि से सब को छलती रहती है परन्तु

किसी की आंख नहीं खुलती ! सब ठगे गये परन्तु इस ठगनी का भेद सच्चे अर्थ में किसी पर भी नहीं खुला। ऋषि, मुनि, जोगी, जंगम, सन्यासी वैरागी, और पैगम्बर सब ही पर इस का दांव चलता रहता है। केवल वह मनुष्य इसके हाथ से छूटता है जिस पर गुरू की दया होती है। बाक़ी तो सब इस के भँवर में ऐसी बुरी तरह से डूबे कि उन में से किसी एक का भी पता न लगा।

दोहा

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस।
जा ठग ने ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस॥
(परम संत कबीर साहिब)

माया

सजन कोइ साँच न बात कहै (टेक)
योगाचार योग रस माते, छिनक ज्ञान छिन भंगी।
मध्यम वाले मध्य समाने, शून्य वाद सर्वंगी॥ सजन
सांख्य गिनावे गिन्ती सब की, योग समाधी गावे।
वेद अन्त वेदान्त की आसा, कर्म में कर्मी फँसावे॥ सजन
जैसी मन की भई कल्पना, तैसा खेल खेलाया।
खटपट में षट दर्शन भूले, अन्त मिला क्या छाया॥ सजन
पूरा खेल किसी का नाहीं, खेलैं खेल खिलाड़ी।
किसको बताऊँ पंडित मूरख, किसको ज्ञानी अनाड़ी॥ सजन
गुरु की दया साध की संगत, सार तत्त्व लख पाया।
राधास्वामी चरण कमल गह, छूटी माया छाया॥ सजन

सम्पादकीय

दिवाली उत्सव पर हमारी शुभ कामनायें

दिवाली आरही है। प्राचीन काल से भारत में यह प्रथा चली आरही है कि विशेष रूप से हिन्दू लोग अपने घरों के कोने कोने की सफाई कराते, लिपवाते तथा पुताई कराते हैं। दिवाली के दिन दीपकों तथा बिजली आदि से घर के कोने कोनें में प्रकाश पहुँचाते हैं। साथ ही लक्ष्मी का पूजन करके यह प्रार्थना करते हैं कि वह आगामी वर्ष तक उनकी पूर्णरूपेण साथी बनी रहें।

हमारे ऋषियों ने इस उत्सव को धार्मिक रूप देकर बड़ा उपकार किया क्योंकि स्वास्थ्य और अरोग्यता की जाहिरा दृष्टि से तो यह अत्यन्त आवश्यक है ही मगर साथ ही साथ इसमें जो एक गुप्त भाव है जिसको हम भुला बैठे हैं। वह यह है कि जहाँ हम बाहरी ईंट पत्थरों और मिट्टी के घरों को साफ और स्वच्छ बनाते हैं हम इस अपने ५ हाथ के शरीर के कोने कोने को भी शुद्ध करें। इसमें गन्दगी से भरे विचारों को कूड़े की तरह निकाल कर बाहर फेंक दें और मन को निर्मल बना कर आराधना करें। फिर वह परम शक्ति आपही आप आप को धन धान्य आदि से परिपूर्ण कर देगी। यही संत मत का दृष्टि कोण है। यही ऋषियों की शिक्षा है कि तुम उस सावित्री रूपी सूर्य का ध्यान करो और तुम को मनो वांछित फल मिल जायेगा।

उस परमतत्व, सर्वाधार या संसार के पालन कर्त्ता विष्णु भगवान से हमारी प्रार्थना है कि वह हमारी बुद्धियों को अन्तरीय शुद्धि और सच्ची आराधना की ओर लगाये जिससे हमारे सब कष्ट दूर हो जांय और हमको धनधान्य की प्राप्ति हो जाय।

स० सम्पादक

संतों का प्रगट होना

(प्रवचन परम संत दयाल 'फकीर' साहब)

मैंने कृतज्ञता के भावाधीन अपने जीवन की खोज के अनुभव के आधार पर जो अन्तिम जीवन या अन्तिम नाम के जपने के बाद हुआ, मैं कहना चाहता हूँ कि वह मालिके कुल जिसके नाम पर मनुष्य के मस्तिष्क ने लाखों करोड़ों ख्याल पैदा करके अनेक धर्म और सम्प्रदाय बनाये हुये हैं वह वास्तव में एक परम तत्व है, जिसको मानव जीवन केवल अनुभव करता है। यदि मानव जीवन और आगे चले तो यह जीवन समाप्त हो जाता है। इसलिये ऐ मनुष्य! तू उस मालिक के नाम पर क्यों व्यर्थ परस्पर घृणा, द्वेष, मत्सर पैदा करके संसार में आपत्ति और विपत्ति फैला रहा है। मैं निर्भय होकर कहने का साहस करता हूँ कि यह समस्त मत मतान्तर, धर्म सम्प्रदाय मनुष्य की बुद्धि ने बनाये हुये हैं जो किसी हद तक ठीक हैं मगर इनमें फंस कर परस्पर घृणा द्वेष रखना अज्ञानता के सिवाय कुछ नहीं है।

पूर्ण पुरुष या जिनको परमसंत कहा जाता है केवल कुदरत या मौज इसलिये प्रगट करती है कि मनुष्य को उसके अपने आपे का ज्ञान दिया जाय अर्थात् कि वह कौन है ताकि उसका जीवन शान्ति पूर्वक व्यतीत हो जाय। यही बात स्वामी जी ने कही है—

आप आपको आप पहिचानो।
कहा और का नेक न मानो॥

गुरु नानक का कथन है—कहे नानक बिन आपा चीन्हे, मिटे न भरम की काही।

मैंने इन महा पुरुषों की शिक्षा को अमल करके समझा

है। मेरी समझ में मनुष्य चेतना का एक बुलबुला है। हां, इसका स्वस्वरूप पूर्ण है। इस ख्याल से मैंने भी समझा है कि हर एक मनुष्य एक ही जैसा है। यदि इस बात को समझ कर हम इस दुनियाँ में जीवन बितायें और प्रकृति के नियम अर्थात संकल्प शक्ति और आत्मिक संगति के ज्ञान से सहारा लेकर काम करें तो हमारा यह जीवन सुख शान्ति से गुजर सकता है। हमारा ज्ञान, हमारा मन हमको अनेक प्रकार के नाच नचाता है। इसलिये संतों के मार्ग में केवल इस मन के नाच या इसके बेअख्तयार होकर गलत समझ के अनुसार काम करने से या सोचने विचारने को बन्द करने और सही खयाल या विचार को लेने के लिये सुमिरन ध्यान भजन और साथ ही पूर्ण पुरुषों का सत्संग रक्खा है।

मगर

आज वह दिन आगया कि संत मत की शाखायें भी असलियत से कोरी होकर अपनी अपनी धड़ा बँदियों और दायरों में बँटकर गलत गुरुइज्म को समझ कर इस उद्देश्य को पूरा नहीं कर रहीं जिसके लिये कलियुग में संतों का अवतार होता है। इसलिये चूंकि प्रकृति माता दयाल है ऐसा समय आना अनिवार्य है, जहां कोई शक्ति सर्वसाधारण को अपने मन के वश करने के लिये विवश करे। इस विचार से मेरा अनुभव है कि वह दयाल अकाल की मौज सम्भव है इस शिक्षा को हुकूमत में परिवर्तन करदे ताकि मानवजाति खुशी से अपना जीवन बिता सके क्योंकि बिना भय या किसी की महानता को दिल में जगह दिये मनुष्य का मन वश में नहीं रहता है।

इस विचार से मैं वर्तमान समय के समस्त नामधारियों, आचार्यों और महापुरुषों व सत्संगियों को ख्याल दे रहा हूं

कि सचाई को ग्रहण करो, रहस्य को समझो। अपने मन पर सवारी करो। एक दूसरे के काम आओ। अपने रूप को जानो। न खुदा बनो न ब्रह्म बनो बल्कि इंसान बनो। मौज के खेलने मुझे खेल खिलाया। यदि मेरा अनुभव सत्य है और कोई पक्ष पात नहीं है तो जो कुछ मैं कह चला हूँ या आगे यदि जीवन रहा तो और कहूँगा तो वह सत होना चाहिये, अन्यथा यह भूल भुलैयाँ का खेल है। जिस तरह से और नाचे मैं भी नाच कर चला जाऊँगा।

यह काम मुझ से मौज ने मजबूरन कराया है। समझ में नहीं आता कि क्यों निःस्वार्थ इस ओर घसीटा जा रहा हूं। सम्भव है दिमागी संतुलन ठीक न रहा हो।

सर्व साधारण ने यह समझा है कि परमार्थ के कमाने वाले का स्वार्थ तो अपने आप बन जाता है। यह गलत है। धोका फरेब व ४२० करके लोगों को रोचक और भयानक बातें कह कर सम्भव है मेरा जैसा कोई महात्मा बन कर सर्व साधारण को अपने चक्र में फंसाकर इनको अपने आराम, मान बड़ाई और बार बरदारी का जानवर बनाले मगर यह सचाई नहीं है। जहाँ तक मैंने समझा वह यह है कि ऐ इंसान! तुझको जो मिलता है वह तेरे अपने कर्म से, विचार से, भाव से और विश्वास से मिलता है।

इसलिये

आपन को परबोधिये, आपन को उपदेश।
जो यह मन वश आवहीं, शिष्य होय सब देश॥

स्वयं कमाओ औरों को खिलाओ, स्वयं खुश रहो दूसरों को खुश करो। अपने कर्मों तथा विचारों को शुभ या अनुकूल बनाने की कोशिश करो। परस्पर सहायता और सहानुभूति को धारण करो। जीओ और जीने दो। सब से बड़ी बात यह

है किसी निर्बन्ध का सत्संग करो।

अपने कर्म भोग बस या मौज दयाल के आसरे।
कह चला हूँ अनुभव अपना अपने कर्म को काटने॥
दाता दयाल और साँवले शाह ने दिया था काम मुझे।
काम अपना अर्पण करता हूं संसार वालों के लिये।

राष्ट्रों में परस्पर अविश्वास से अशान्ति

चीन ने भारत की मित्रता का दम भरा मगर अन्तर में कपट भाव रक्खा। वह मित्रता अधिक दिन न ठहर सकी। उसने भारत की मित्रता का अनुचित लाभ उठा कर पहाड़ी इलाकों पर अधिकार जमाना प्रारम्भ कर दिया। चीन की मित्रता की पोल खुल गई और उसकी ओर से विश्वास हट गया। जब विश्वास नहीं तो मित्रता कैसी! यह एक प्रत्यक्ष उदाहरण है जो हमको बताता है कि विश्व के उपनिवेशों का बृहत सम्मेलन बार-बार होता है मगर चूंकि राष्ट्रों का एक दूसरे पर विश्वास नहीं है इसलिये राष्ट्र के बड़े-बड़े प्रश्न बिना हल हुये रह जाते हैं। जिस शान्ति (Peace) का स्वप्न लोग देखते हैं वह दूर भागती जाती है।

क्या पार्टीबन्दी से शान्ति हो सकती है? क्या युद्ध की बहुत बड़ी सामिग्री या बम, राकेट आदि के बनाने या रखने से शान्ति लाई जा सकती है? क्या शान्ति जैसी वस्तु जबानी जमा खर्च के द्वारा-स्थापित की जा सकती है? संत तथा पूर्ण पुरुषों का कथन है कि शान्ति दिखावे की या थोथी बातों से प्राप्त नहीं हो सकती। जब तक अपनी शक्ति का अहंकार मौजूद है, अंतरीय अवस्था शुद्ध नहीं है या यों कहो कि जब तक अपने पराये के भाव मौजूद हैं, अपने आपे का ज्ञान या

उस परम तत्व सर्वाधार की शक्ति का अनुभव नहीं है, तब तक लाख जाहिरा प्रयत्न करने पर भी शान्ति नहीं आ सकती।

यही हालत हमारे भारत की भी है। भ्रष्टाचार का पूरा बोलवाला है। अनुशाशन हीनता बढ़ती जा रही है। अनेक प्रकार के विवाद जैसे किसी जगह भाषा विवाद, कहीं प्रान्त विवाद आदि जोर पकड़ रहे हैं। काँग्रेस के हाथ में शासन की बाग डोर है मगर हाई कमान अब तक कांग्रेस की आपसी फूट को दूर नहीं कर सकी है।

अरबों रुपये का ऋण अब तक बाहर के देशों से लिया जा चुका है और उससे अधिक लेने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। अनेक प्रकार की योजनायें रोजाना बनती रहती हैं।

हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उन्नति के कार्य न किये जायँ या हम शासन के कार्यों पर टीका टिप्पणी करें। इसके लिये तो और समाचार पत्र ही काफी हैं। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि जब इतने पराकाष्ठा पर पहुँचे हुये बड़े-बड़े राष्ट्र इस भौतिक उन्नति करके भी अशान्त हैं तो क्या भारत में केवल पंच भौतिक पदार्थों की उन्नति से सुख और शान्ति आ सकती है।

यद्यपि हमारे राष्ट्रपति ने भी कई बार ऐसा कहा है कि आध्यात्मिक उन्नति के बिना यह भौतिक उन्नति शून्य सी है और ऐसा ही भाव हमारे प्रधान मन्त्री भी व्यक्त कर चुके हैं। इसलिये यह तो नहीं कहा जा सकता कि जिस भाव को हम प्रगट करना चाह रहे हैं उसकी ओर उनका ध्यान नहीं है मगर इतना बिना कहे नहीं रह सकते कि केवल इन भौतिक पदार्थों की योजनायें किसी पेड़ के फूल पत्तों को सींचना है। जब तक अध्यात्मिक ज्ञान रूपी वृक्ष को न सींचा जायगा उस समय तक असली और स्थायी सुख शान्ति प्राप्त न होगी और न यह

दारुण रोग भ्रष्टाचार, अनुशासन हीनता आदि आदि दूर होंगे, मगर इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसलिये भारत के नेताओं, शासनाधिकारियों, आचार्यों और संत महात्माओं से प्रार्थना है कि अध्यात्म ज्ञान के प्रचार की ओर अधिक से अधिक ध्यान दें ताकि भारत की वर्तमान दशा सुधर सके और साथ ही भारत के कर्णधारों से भी यही विनय है। स० सम्पादक

दशहरा पर दहली सत्संग पर एक दृष्टि

दशहरे पर "दयाल फकीर सत्संग सभा" की ओर से इस वर्ष भी ता० २९-९-६०, ३०-९-६० व १-१०-६० को हिन्दू महासभा के हाॅल में सत्संग हुआ। परमसंत दयाल फकीरचन्द जी महाराज, संत कृपाल सिंह जी महाराज, दयाल स्वरूप नन्दू भाई जी महाराज, संत स्वरूप पीरे मुर्गा साहब व पूज्य सरदार दीवान सिंह जी ने भिन्न भिन्न पहलुओं से सार तत्व को समझाते और हृदयाँकित कराते हुये प्रवचन कहे। सत्संगी तथा प्रेमी भाइयों की संख्या पहिले से भी अधिक थी। दूर-दूर से काफी कष्ट उठा कर और खर्च करके लोग आये थे।

सब के हृदय प्रेम भाव से परिपूर्ण दिखाई देते थे। चिन्ता फिक्र, द्वेष आदि बातों का कहीं नाम भी दिखाई नहीं देता था। यह है सत्पुरुषों की संगत का प्रभाव। मालिक करे यह प्रभाव उनके ऊपर सदा बना रहे। स० सम्पादक—

हनम कुंडा (हैदराबाद दक्षिण) में
राधास्वामी शताब्दी

आगामी बसन्त पंचमी सं० २०१७ (२१ जनवरी १९६१) को पांच दिन तक मनायी जायगी। ऐसा दशहरे के

सत्संग दहली में निश्चय किया गया था जो पूज्य भाई गिरधरसिंह जी ने प्रकट किया। परम संत दयाल फकीर चन्द जी महाराज सत्संग करायेंगे तथा अन्य सन्त महात्माओं के पधारने की भी आशा है।

इस महान पर्व पर मानसिक तथा आत्मिक ज्ञान के जिज्ञासुओं को अवश्य पधार कर लाभ उठाना चाहिये।

दयाल 'फकीर' साहब ने एक पुस्तक 'राधा स्वामी शताब्दी पर मेरी भेंट" में राधास्वामी मत, राधास्वामी योग, गुरू, नाम की महिमा व व्याख्या, मुक्ति, आवागवन आदि आदि विषयों पर अपना अनुभव वर्णन किया है जो 'शिव कार्यालय' से प्रकाशित हो चुकी है। इस दृष्टि से यह पुस्तक एक अमूल्य निधि है। मू० १।) विशेष व्याख्या दूसरे भाग में शताब्दी पर की जायगी।

दोहे

गुरु ज्ञाता गुरु ज्ञान गम, गुरु ज्ञान के रूप।
गुरु के चरन सरोज में, सूझै ज्ञान अनूप ॥१॥
गुरु विदेह गुरु गुण रहित, गुरु सब के आधार।
गुरु की दया अपार से, उतरै भव जल पार ॥२॥
गुरु समाने शिष्य में, ज्ञान रहा भरपूर।
सुरत शब्द मेला भया, बाजै अनहद तूर ॥३॥
कहाँ ढूँढै तू बावरे! गुरु का रूप निहार।
गुरु के चरन सरोज में, ज्ञान मुक्ति भण्डार ॥४॥
जा सुमिरत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा।
कहैं कबीर सुन साधवा! कर सत् गुरु सेवा ॥५॥